श्री रामकृष्ण-विवेकानंद भाव-धारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

विवेक शिखा

वर्ष—८ जुलाई-अगस्त—१९८९ अंक—७-८

स्वामी गम्भीरानन्द स्मृति अंक

Shri Ramakrishna Ashram
No.....
Rajkot.

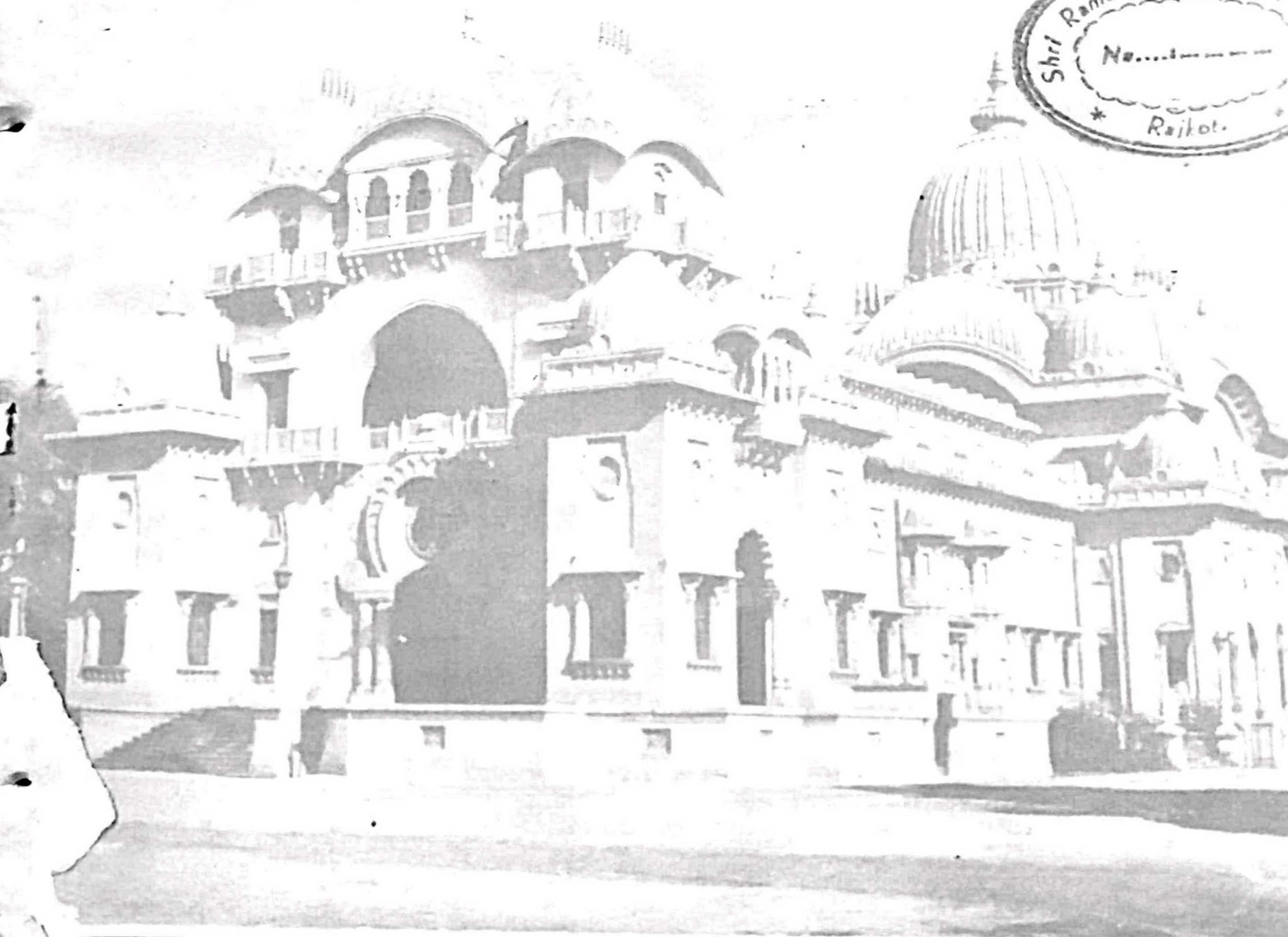

स्वामी गम्भीरानन्द स्मृति अंक

(इस अंक में)

१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. गुरु स्तोत्रम्		२
३. महाप्राज्ञ को प्रणाम	(सम्पादकीय सम्बोधन)	३
श्रद्धांजलियां :		
१. ब्रह्मलीन स्वामी गम्भीरानन्दजी की मधुर स्मृति	श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज	-
२. एक सुसमन्वित जीवन	स्वामी गहनानन्द	१२
३. एक आदर्श जीवन	स्वामी आत्मस्थानन्द	१४
४. आध्यात्मिक जगत के विशिष्ट पुरुष	भारत साधु समाज	२१
जीवन छवि :		
१. सुख-सागर के हंस स्वामी गम्भीरानन्द		२२
२. पूजनीय गम्भीर महाराज की विनोदप्रियता	एक संन्यासी	३६
सागर तीरे :		
१. श्री गुरुदेव के चरणों तले	श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज	४२
२. श्रीरामकृष्ण के लीलापार्षदों के संग में	,,	४८
सिन्धु तरंग :		
१. तद् विद्धि परिप्रश्नेन	श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज	४९
२. नवयुवकों को आह्वान	,,	५६
३. पत्रावली	,,	५९
संगम में अवगाहन :		
१. स्वामी गम्भीरानन्दजी के कुछ संस्मरण	स्वामी स्मरणानन्दजी महाराज	६०
२. स्वामी गम्भीरानन्दजी की स्मृति	स्वामी आत्मारामानन्द	६१
३. दिव्य स्मृति	स्वामी अच्युतानन्द	६६
४. एक आदर्श संन्यासी	स्वामी अमरेशानन्द	६९
५. स्मृति कण	स्वामी श्रीकृष्णानन्द	७१
६. स्मृति अर्घ्य	स्वामी विमलात्मानन्द	७२
७. एक महान जीवन की कुछ झलकें	एक ब्रह्मचारी	७४
८. पूजनीय गुरुदेव के स्मृति सुमन	ब्रह्मचारी विवेक	७६
९. मेरे गुरु स्वामी गम्भीरानन्द	कुमारी चुकचुक	७८
१०. अहैतुकी कृपा सिन्धु	श्री सुकुमार सान्याल	८०
११. शरणं तव चरणं	श्री नितिन दिवाकर	८१
१२. अंतिम दीक्षा दान	एक भक्त	८३
१३. धर्म तथा जीवनी साहित्य के प्रख्यात पुरुष	श्री प्रणवेश चक्रवर्ती	८५

Shri Ramakrishna Ashrama
No. 17215/59
Rajkot.

रामकृष्ण मठ एवं मिशन के एकादशवें महाध्यक्ष

श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज

आविर्भाव — ११ फरवरी, १८९९

महासमाधि — २७ दिसम्बर, १९८८

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—८ जुलाई-अगस्त—१९८९ अंक—७-८

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखनी अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें :

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

गुरु मानो गंगाजी हैं। गंगा में लोग कितना कूड़ा-करकट और गन्दी चीजें डालते हैं, परन्तु इससे उसकी पवित्रता घट नहीं जाती। उसी प्रकार गुरु पर भी निन्दा, अपमान आदि बातों का परिणाम नहीं होता।

(२)

समुद्र में एक प्रकार की सीपी होती है जो स्वाति नक्षत्र की वर्षा की एक बूँद के लिए सदा मुँह बाए पानी पर तैरती रहती है, किन्तु स्वाति की वर्षा का एक बिन्दु जल मुँह में पड़ते ही वह मुँह बन्द कर सीधे समुद्र की गहरी सतह में डूब जाती है तथा वहाँ उस जल-बिन्दु से मोती तैयार करती है। इसी तरह यथार्थ मुमुक्षु साधक भी सद्गुरु की खोज में व्याकुल होकर इधर-उधर भटकता रहता है; परन्तु एक बार सदगुरु के निकट मन्त्र पा जाने के बाद वह साधना के अगाध जल में डूब जाता है—तथा अन्य किसी ओर ध्यान न देते हुए सिद्धिलाभ होने तक साधना में लगा रहता है।

(३)

गुरु मानो मध्यस्थ हैं। जैसे मध्यस्थ प्रेमिक को प्रेमिका के साथ मिला देता है वैसे ही गुरु भी साधक को इष्ट के साथ मिला देते हैं।

(४)

अवतारों के साथ जो आते हैं, वे या तो नित्यसिद्ध होते हैं, या वह उनका अन्तिम जन्म होता है।

गुरुस्तोत्रम्

विश्वसार तंत्र

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥२॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥
स्थावरं जंगमं व्याप्तं येन कृत्स्नं चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४॥
चिद्रूपेण परिव्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५॥
सर्वश्रुति शिरोरत्न-समुद्भासित मूर्तये ।
वेदान्ताम्बुज-सूर्याय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥६॥
चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्यामातीतं निरंजनं ।
बिन्दुनादकलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥७॥
ज्ञानशक्ति समारूढस्तत्त्वमालाविभूषितः ।
भक्तिमुक्तिप्रदाता च तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥८॥
अनेक जन्म संप्राप्तं-कर्मेन्धनविदाहिने ।
आत्मज्ञानाग्नि दानेन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥९॥
शोषणं भवसिन्धोश्च प्रापणं सार सम्पदः ।
यस्य पादोदकं सम्यक् तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१०॥
न गुरोरधिकं तत्त्व न गुरोरधिकं तपः ।
तत्त्वज्ञानात् परं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥११॥
मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरु श्रीजगद्गुरुः ।
मदात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१२॥
गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परमदैवतम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१३॥
ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम् ।
द्वान्द्वातीतं गगन सदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥
एकं नित्यं विमलमचलंसर्वधीसाक्षिभूतम् ।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥१४॥

—:o:—

सम्पादकीय सम्बोधन

महाप्राज्ञ को प्रणाम

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

रामकृष्ण मठ एवं मिशन के ग्यारहवें महाध्यक्ष ब्रह्मलीन पूजनीय श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज की पुण्य स्मृति में प्रकाशित 'विवेक शिखा' का यह विशेषांक आपके हाथों में प्रस्तुत करते हुए मैं अपार हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ।

रामकृष्ण मठ और मिशन के कुछ वरेण्य साधु ब्रह्मचारियों ने—जिनका नामोल्लेख करना अपेक्षित नहीं है—इस विशेषांक की योजना को सुन्दर, साकार और सघन रूप देने में जो श्रम, साधना और सहयोग किया है, वह अनिर्वचनीय है। यह विशेषांक उनके ही प्रेम, प्रचेष्टा एवं पुरश्चरण का प्रतिफल है। मैं उन सबको प्रणाम करता हूँ।

पूजनीय गम्भीरानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण की उद्यान वाटिका –रामकृष्ण-संघ– के विलक्षण सुमन थे। उनकी साधना, सिद्धि और संघ के संचालन-कौशल की सुगंध से इस देश और विदेश के लाखों-लाख लोगों के मन-प्राण आप्यायित हैं। उनकी कृपा-दृष्टि का पीयूष पान कर हजारों-हजार नर-नारियों ने स्वयं को सँवारा है, अपने जीवन का गठन किया है, अपने जीवन का रूपान्तरण किया है, अपने जीवन में धन्यता प्राप्त की है। उनके श्रावणी साहचर्य के अभाव-बोध से हम सब स्वभावतः शोकाहत हैं।

स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज ने सन् १९२३ ई० में एक ब्रह्मचारी के रूप में रामकृष्ण मिशन के देवघर (बिहार) केन्द्र से अपने साधु जीवन की यात्रा शुरू की। और तब से १९८८ ई० के २७ दिसम्बर की संध्या तक—अपने साधु जीवन के सुदीर्घ ६५ वर्षों तक—उन्होंने सेवा, साधना, स्वाध्याय और सत्कर्मों की अखंड दीपशिखा जलाये रखकर 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' का विलक्षण आदर्श प्रस्तुत किया।

श्रीरामकृष्ण की सन्तान को हर दृष्टि से पूर्ण, परिष्कृत और परिपक्व होना ही चाहिए। शाक-सब्जी काटने से लेकर पत्रिका के सम्पादन और साहित्य एवं शास्त्रों के प्रणयन तक, देवघर विद्यापीठ के छात्रों के अध्यापन से लेकर जप-ध्यान की गहन साधना तक और वरिष्ठ साधुओं की सेवा से लेकर रामकृष्ण संघ के विभिन्न दायित्वपूर्ण पदों के सोपानों को पार करते हुए महाध्यक्ष का पद भार ग्रहण करने तक पूजनीय गम्भीर महाराज ने साधु जीवन की अनेक मंजिलें तय की थीं। और हर दृष्टि से वे श्रीरामकृष्ण की एक योग्यतय सन्तान सिद्ध हुए थे।

समय, शब्द और साधु जीवन—तीनों की मर्यादा के साकार विग्रह थे स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज।

प्रत्येक कार्य निर्धारित समय पर करना, नपे तुले स्वल्पतम शब्दों का व्यवहार करना और समस्त

करणीय कर्मों को करते हुए भी आत्मस्थ रहना, अंतर्लीन रहना पूजनीय गम्भीर महाराज का स्वभाव और स्वधर्म था।

पूजनीय गम्भीर महाराज संन्यास के आदर्श स्वरूप थे। गीता के इस श्लोक पर ध्यान करना उन्हें विशेष रुचिकर लगता था—

ज्ञेयः स नित्य संन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥(५/३)

अर्थात् "जो व्यक्ति न किसी से द्वेष करता है और न किसी वस्तु की आकांक्षा करता है, उस निष्काम कर्मयोगी को ही सदा संन्यासी समझना चाहिए, क्योंकि वह राग द्वेष आदि द्वन्द्वों से मुक्त रहकर सुख पूर्वक संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है।" हम सब जानते हैं कि गम्भीर महाराज ऐसे ही नित्य संन्यासी थे।

संन्यासियों के जन्म-ग्रहण का एक विशेष प्रयोजन होता है। स्वामी विवेकानन्द जी की दृष्टि में "'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' ही संन्यासियों का जन्म होता है। संन्यास ग्रहण करके जो इस ऊंचे लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाता है उसका तो जीवन ही व्यर्थ है 'वृथैव तस्य जीवनम्'।" जगत् में संन्यासी क्यों जन्म लेते हैं? स्वामी जी प्रश्न करते हैं और स्वयं उत्तर देते हुए कहते हैं—"औरों के निमित्त अपना जीवन दान करने को, जीव के आकाशभेदी क्रन्दन को दूर करने को, विधवा के आँसू पोंछने को, पुत्रवियोग से पीड़ित अबलाओं के मन को शान्ति देने को, सर्वसाधारण को जीवन संग्राम में सक्षम करने को, शास्त्र के उपदेशों को फैलाकर सब का ऐहिक और पारमार्थिक मंगल करने को और ज्ञानालोक से सब के भीतर जो ब्रह्मसिंह सुप्त है, उसे जाग्रत करने को।" कहना न होगा कि पूज्य गम्भीर महराज का संन्यासी जीवन इस निकष पर सदैव खरा उतरा था।

यह अकारण नहीं था कि उनके गुरु महापुरुष महाराज (श्रीरामकृष्ण के अन्यतम लीलापार्षद एवं रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष स्वामी शिवानन्दजी महाराज) ने पूजनीय गम्भीर महाराज को ब्रह्मचर्य दीक्षा के उपरान्त सौम्य चैतन्य एवं संन्यास दीक्षा के उपरान्त गम्भीरानन्द की संज्ञा दी थी। ईश्वर की महत्तम कृतियाँ सौम्य और गम्भीर हैं। सागर अपनी अतलता में जितना ही गम्भीर है, अपने फेनिल ज्वार-भाटों में उतना ही सौम्य भी। सर्वंसहा वसुन्धरा अपनी अन्तः प्रकृति से जितनी ही गम्भीर है अपने बाह्य स्वरूप में उतनी ही सौम्य भी। काँटों की डाल पर खिला हुआ गुलाब, आकंण्ठ पंक में डूबा हुआ अरुणाभ कमल और कृशकाय डाल पर चटखी हुई जुही—सब के सब अपने मौन में जितने ही गम्भीर हैं, अपनी सुगंध, सुकुमारता और सौन्दर्य में उतने ही सौम्य भी। संन्यासी ईश्वर की सृष्टि की महत्तम कृति होते हैं। वे ईश्वर के स्वरूप के ही साक्षात् निदर्शन हैं। ईश्वर स्वयं भी तो गम्भीर और सौम्य ही हैं। स्वभावतः एक सच्चे संन्यासी को गम्भीर और सौम्य एक साथ ही होना होगा। श्रीरामकृष्ण ने इसी से माँ से प्रार्थना की थी—"माँ! मुझे शुष्क संन्यासी मत बनाओ। मुझे रस में डुबाए रखो।" जगत की निस्सारता को परख कर और ज्ञान के शिखर पर आरोहित होकर मनुष्य के शुष्क, नीरस और गम्भीर हो जाने का खतरा तो रहता ही है। और मात्र सौम्यत्व मनुष्य को एक गहरे स्तर तक भावुक बना दे सकता है। पूजनीय गम्भीर महाराज जितने ही प्रकृतया गम्भीर थे उतने ही सौम्य भी। छान्दोग्य

उपनिषद् में हम पाते हैं कि जाबालि पुत्र सत्यकाम को उसके गुरु आचार्य हारिद्रुमत गौतम और ब्रह्म के एक एक पाद का उपदेश देने वाले वृषभ, अग्नि, हंस और मद्गु सब के सब सौम्य कह कर ही सम्बोधित करते हैं, क्योंकि वह सरल, निश्छल, स्पष्टवादी और सत्यभाषी था। हमारे पूजनीय गम्भीर महाराज में सौम्यता और गम्भीरता का मणि-कांचन योग था। इस अर्थ में वे संन्यासियों के आदर्श थे। अभी जब मैं आपसे ये बातें कह रहा हूँ, मेरी आँखों के समक्ष उनकी सौम्य, शान्त और दीर्घकाय गम्भीर छवि भास्वर हो उठी है। उनकी कितनी ही सुखद और अविस्मरणीय स्मृतियाँ लहरों को ठेलकर उठने वाली लहरों की भाँति मेरे सामने साकार हो रही हैं। मैं भावुकता के स्तर तक उनकी स्मृति में पहुँचता जा रहा हूँ। इसलिए मैं उन्हें मौन प्रणाम ही निवेदित करता हूँ।

पूजनीय गम्भीर महाराज की गम्भीरता के कारण कभी कभी कुछ लोग उनके समीप जाने में भी भयभीत हो जाते थे। किन्तु ऐसे लोग साधु जीवन की महिमा ठाक से पहचान ही नहीं पाते थे। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है

साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुणमय फल जासू॥
जो सहि दुःख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा॥

अर्थात् "संतों का चरित्र कपास के चरित्र के समान शुभ होता है। जैसे कपास का फल शुष्क, नीरस, विशद (उज्जवल) और गुणमय (तन्तुमय) होता है वैसे ही संतों का जीवन भी विषय-रस के अभाव के कारण नीरस होता है, सच्चरित्रता से युक्त और अज्ञान एवं पाप के अन्धकार से रहित होने के कारण उज्ज्वल होता है और सत्गुणों का भण्डार होता है। जैसे कपास अनेक दुःख झेलकर वस्त्र के रूप में स्वयं को ढालकर दूसरों के गोपनीय स्थान को ढंकता है वैसे ही साधु भी स्वयं दुःख झेलकर दूसरों के दोषों को ढंकते हैं जिसके जिसके फलस्वरुप उन्हें संसार में वंदनीय यश प्राप्त होता है।" ऐसे ही कपास की भाँति था गम्भीर महाराज का वदनीय यशस्वी जीवन।

पूजनीय स्वामी गम्भीरानन्द जी का जीवन निष्काम कर्म का एक अखण्ड यज्ञ था। अनवरत साधना के द्वारा आत्मसाक्षात्कार कर वे ज्ञान के चूड़ान्त शिखर पर आरूढ़ हुए थे। और उनके भीतर एकान्त भक्ति की अन्तःसलिला सदैव प्रवाहित होती रहती थी। वे स्वयं में ज्ञान, भक्ति और कर्म के त्रिकूट हो गये थे।

पूजनीय गम्भीर महाराज महाप्राज्ञ थे। वे प्रज्ञा में प्रतिष्ठित थे। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ (२।५७-६१)

अर्थात् "जो व्यक्ति सभी विषयों में आसक्ति से रहित है, जो अच्छा या बुरा कुछ भी प्राप्त होने पर न तो आनन्दित होता है, न विरक्ति का बोध करता है उसका ज्ञान प्रतिष्ठित हुआ है, अर्थात् वही स्थित प्रज्ञ है।

"जैसे कछुआ अपने अंगों को भीतर से सिकोड़ लेता है, वैसे ही जो अपनी समस्त इन्द्रियों को इन्द्रिय-विषयों से खींचकर भीतर समेट लेता है, उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित है।

"निराहार रहनेवाले देहाभिमानी जीव के इन्द्रिय-विषय तो निवृत हो जाते हैं, पर उनके प्रति रस या आसक्ति रह जाती है। किन्तु परमतत्व का साक्षात्कार कर लेने पर उसका यह रस भी निवृत हो जाता है।

"हे कौन्तेय, यत्नशील बुद्धिमान् पुरुष के मन को भी मथ देनेवाली (बलवान्) इन्द्रियाँ बलपूर्वक विषयों में खींच लेती हैं।

"अतएव, उन सब इन्द्रियों को संयमित करके, समाहित चित्त होकर मेरे परायण हो अवस्थित रहे; क्योंकि जिसकी इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसी की बुद्धि (प्रज्ञा) प्रतिष्ठित होती है।"

कहने की जरूरत नहीं कि हमलोगों में जिन लोगों ने पूजनीय गम्भीर महाराज के उदात्त, अश्वत्थ वृक्ष की भाँति आत्मस्थ जीवन तरु को निकट से देखा है वे जानते होंगे कि पूजनीय महाराज की प्रज्ञा किस भाँति प्रतिष्ठित थी और स्थित प्रज्ञता के कैलाश पर किस प्रकार वे सदैव प्रतिष्ठित रहा करते थे।

पूजनीय गम्भीर महाराज ने गुरु-रूप में हजारों हजार जगत्-ज्वाल से दग्ध, ताप-तप्त नर-नारियों को मंत्र-दीक्षा देकर, अपने कृपापूर्ण आश्रय में लेकर उनके जीवन के जेठ की दुपहरी में श्रावण की सलोनी पूर्णिमा उतार दी। हजारों-हजार आबाल वृद्ध नर-नारी उनकी करुणा का अमृत-कण प्राप्त करने स्वतः उनकी ओर खिंचे चले आते थे और जिसको भी इस करुणा-सिन्धु के तट पर आने का सौभाग्य मिला उसे ही धन्यता मिली, उसे ही एक अतुलनीय तृप्ति मिली, उसे ही अपने जीने का और अपने मरने का एक नया अध्याय मिला, एक नया अर्थ मिला। स्वामी विवेकानन्द जी कहा करते थे कि लोग मनुष्यों को नेता या गुरु नहीं बनाते हैं; जो गुरु या नेता होते हैं, वे उस अधिकार को साथ लेकर ही जन्म ग्रहण करते हैं। "A leader is always born and never created." इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए श्रीरामकृष्ण के लीलापार्षद् और श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंगकार स्वामी सारदानन्द जी महाराज ने लिखा है—"लोक गुरुओं के तुच्छ स्वार्थमय 'अहं'-भाव का सदा के लिए विनाश हो जाता है तथा उनके स्थान पर विराट् भावाभिमुखी 'अहं' भाव का विकास होने लगता है। सब के कल्याण की खोज करना ही उस 'अहं'- भाव का स्वभाव है। इसके अतिरिक्त फूल के खिलने पर भ्रमर को जैसे अपने आप उसका

पता चल जाता है तथा मधु के लोभ से गहाँ पर वह स्वयं आ जाता है, फूल के लिए भ्रमर को सादर आमंत्रित नहीं करना पड़ता है—उसी प्रकार जैसे ही किसी के अन्दर उस विराट् 'अहं'-भाव का विकास होता है तत्काल ही संसार के दुःख सन्तप्त लोग अपने-आप पता नहीं किस तरह उसका पता लगाकर शान्ति प्राप्त करने के निमित्त दौड़कर वहाँ उपस्थित हो जाते हैं।" (ली० प्र० ३/१३४)।

पूजनीय गम्भीर महाराज में इसी गुरु-भाव का विकास हुआ था और वे विश्व के अनगिन व्यथित प्राणियों के शरण-स्थल हो गये थे।

आज भौतिक रूप से पूजनीय गम्भीर महाराज हम से दूर हो गये हैं। उनके श्रद्धालु भक्तों, शिष्यों और सम्पर्कियों का दुःखी होना, शोकार्त होना स्वाभाविक है। किन्तु दूरी और निकटता हमारे अपने मन की सृष्टि है। एक दूसरी दृष्टि से देखने पर पूजनीय गम्भीर महाराज हम सब के और निकट आ गये हैं। पहले उनके दर्शनार्थ बेलुड़ मठ, वाराणसी, देवघर, राँची, पटना, बंगलोर, मद्रास और राजकोट आदि जाना पड़ता था। अब कहीं जाने की जरूरत नहीं। वे हमारे हृदय में आ गये हैं। और यदि हम सब अपने को तथा उनको असीम आनन्द के उस सागर में, जिसे श्रीरामकृष्ण कहा जाता है, देखना सीख लें तो पूजनीय गम्भीर महाराज हमारे निकट, बहुत निकट आ गये हैं।

श्रीरामकृष्ण ही हमारे शरण स्थल हैं, हमारी आत्मा हैं, हमारी अस्मिता हैं, हमारी पहचान हैं। उनमें ही हमें वास्तविक शान्ति मिल सकती है। बाकी तमाम चीजें व्यर्थ हैं, निःसार हैं, मूर्खता हैं, असत्य हैं। श्रीरामकृष्ण ही सत्य हैं। और यदि श्रीरामकृष्ण की दया से हम इस विचार को पकड़े रह सक तो हमारे लिए न कोई शोक है, न ताप है, न दुःख है, न अशान्ति है।

पूजनीय गम्भीर महाराज श्रीरामकृष्ण के ही असीम आनन्द-सागर में समा गये हैं। हम भाग्यवान हैं कि श्रीरामकृष्ण रूपी आनन्द-सिन्धु ही हमारा आश्रय स्थल है, विश्राम-धाम है, विश्रान्ति का नीड़ है। आइए, भगवान श्रीरामकृष्ण देव से हम आन्तरिक प्रार्थना करें कि वे अपने आनन्द धाम में आश्रय देकर हमें कृतार्थ करें। और आइए, हम महाप्राज्ञ पूजनीय स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज के चरणों में अपने श्रद्धापूर्ण प्रणाम निवेदित कर और उनसे निवेदन करें कि वे अपनी करुणा-किरण की वृष्टि कर हमारे भीतर अवगुंठित ब्रह्म-कमल को प्रस्फुटित करने में सहायक हों। जय श्रीरामकृष्ण! जय गम्भीर महाराज!

"सब लोग तो मरने बैठे हैं पर तू तो मृत्यु को जीतने आया है। महावीर की तरह अग्रसर हो जाता किसी की परवाह न कर, कितने दिनों के लिए है यह शरीर? कितने दिनों के लिए हैं ये सुख दुःख? यदि मानव शरीर को ही प्राप्त किया है, तो भीतर की आत्मा को ही जगा और बोल "मैंने अभय पद प्राप्त कर लिया है।" बोल—'मैं वही आत्मा हूं, जिसमें मेरा क्षुद्र 'अहंभाव' लीन हो गया है।" इसी तरह सिद्ध बन जा; उसके बाद जितने दिन यह देह रहे, उतने दिन दूसरों को यह महावीर्य पद अभयवाणी सुना—'तत्वमसि,' 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत'।

—स्वामी विवेकानन्द

ब्रह्मलीन श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्दजी की मधुर-स्मृति

श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
महाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं मिशन, बेलुड़ मठ।

[ब्रह्मलीन श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए ८ जनवरी, १९८९ को बेलुड़ मठ में जो स्मृति-सभा आयोजित हुई थी, उस सभा में श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज द्वारा दिये गये अध्यक्षीय भाषण का यह हिन्दी रूपान्तर है -- सं० ।)

आज हमलोग जो यहाँ समवेत हुए हैं, इसको स्मृति-सभा कहते हैं। गृहस्थों के बीच यह शोक सभा के रूप में प्रचलित है। किन्तु साधुओं के लिए वह प्रयोज्य नहीं है, क्योंकि साधुओं का जीवन अमर-जीवन होता है। इसलिए, हम कहते हैं, आज स्वामी गंभीरानन्द ब्रह्मलीन हैं। उनके भीतर जो सत्ता थी वह अक्षय और अमर है।

उनके व्यक्तिगत जीवन की जो बातें हमलोग इतनी देर तक सुन रहे थे, उनके द्वारा उनकी मधुर-स्मृति का आस्वादन आपलोगों ने किया है—ऐसा मेरा विश्वास है। मैं बहुत मुग्ध होकर उन बातों को सुन रहा था। एक महापुरुष के विराट् रूप को देखकर हम मुग्ध नहीं होते हैं; उसके द्वारा उनका वास्तविक मूल्यांकन नहीं होता है। उनके दैनन्दिन जीवन, उनके प्रत्येक व्यवहार के द्वारा ही उनका वास्तविक मूल्यांकन होता है। इसी पक्ष को वक्ताओं ने आपलोगों के सामने उपस्थापित किया है। उनलोगों ने उनके साथ किस प्रकार से व्यवहार किया है, इसका एक सुन्दर चित्र हमलोगों के समक्ष उन्होंने प्रस्तुत किया है।

जब मैं स्वामी गंभीरानन्द की बात सोचता हूँ तब मुझे विशेष रूप से उन दिनों की बात याद आती है जब ९ वर्षों तक उनके सहयोगी के रूप में मैंने यहाँ (बेलुड़ मठ में) कार्य किया था। उन्हीं दिनों की स्मृतियाँ मेरे मन में विशेष रूप से भासित हो उठती हैं। प्रारंभिक दिनों में उनके साथ घनिष्ठता नहीं हुई। बाद में धीरे-धीरे परिचय हुआ, तबतक वे सुप्रतिष्ठित हो चुके थे। वह परिचय घनिष्ठतम हुआ जब मैंने उनके सहयोगी के रूप में यहाँ कार्य किया।

महासचिव के रूप में अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान में रखकर उन्होंने कभी भी मेरे साथ व्यवहार नहीं किया। सदा बन्धु के रूप में व्यवहार किया है। उनके साथ मेरी खूब बात-चीत होती थी। केवल कार्य की ही बातें नहीं, और भी विषयों पर बातें हुआ करती थीं। खासकर, मिशन ऑफिस (प्रधान कार्यालय) के सामने रखी बेंच पर हमलोग संध्या के समय बैठते थे। उस समय चर्चा-प्रसंग होता; कई तरह के प्रसंग होते—कभी शास्त्रीय तो कभी लौकिक। सभी बातों के भीतर एक आंतरिकता, एक सहृदयता का अनुभव करता। उनके साथ जब कार्यसंबंधी विचार-विमर्श होता, तब वे यह ध्यान में रखकर बात-चीत नहीं करते थे कि वे पद में मुझसे बड़े हैं तथा मैं उनका सहयोगी हूँ। कई बार परामर्श पूछते तथा युक्ति-युक्त होने पर उसे ग्रहण करते थे। यह नहीं कि वे सभी बातों को मान ही लेते थे। उनका अपना व्यक्तित्व ठीक अक्षुण्ण रहता था।

एक बात मुझे विशेष रूप से याद आ रही है। अस्वस्थ अवस्था में साधुओं की सुचिकित्सा की एक सुव्यवस्था हो, इसके प्रति प्रारंभ से ही उनकी विशेष दृष्टि थी। इसलिए उन्होंने आरोग्य भवन (वृद्ध एवं अस्वस्थ साधुओं के रहने का स्थान) का आरंभ करवाया। इसके पहले वह छोटा सा मकान था जो अन्य रूप से व्यवहृत होता था। उसके बाद धीरे-धीरे आज उसने विशाल आकार धारण कर लिया है, कितने ही साधु वहाँ यत्नपूर्वक सेवा-सुश्रूषादि पाते हैं। इसकी नितांत आवश्यकता थी। पहले साधुओं की ठीक ढंग से चिकित्सा की व्यवस्था नहीं थी। उस समय सेवा प्रतिष्ठान (रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान, कलकत्ता) हुआ था, परन्तु वहाँ दीर्घकाल तक साधुओं को रखना संभव नहीं होता एवं यातायात करना भी बहुत कष्टदायक था। अतएव साधु लोग बहुत कष्ट पाते थे। इसलिए, उन्होंने आरोग्य भवन की प्रतिष्ठा की तथा ऐसा करके उन्हें बहुत संतोष हुआ था, यह बात उन्होंने हमें बारम्बार बतायी है। वे केवल साधुओं की ही चिकित्सा की बात नहीं सोचते थे। (बेलुड़ मठ द्वारा परिचालित) डिस्पेन्सरी को भी अधिक पूर्णावयव करने में उनकी चेष्टा में कोई त्रुटि नहीं थी। उनकी विशेष चेष्टा के फलस्वरूप इसके आयतन में वृद्धि हुई तथा कई प्रकार की चिकित्साओं की सुव्यवस्था हुई। इसे उनके विशेष अवदान के रूप में हम ग्रहण कर सकते हैं।

फिर उनकी विद्वत्ता तो सर्वजन विदित है। उनके ग्रन्थ इसका परिचय देते हैं। इस संबंध में भी मेरे साथ वे विचार किया करते तथा उनका यह वैशिष्ट्य था कि कोई बात जब उन्हें भाती तो उसे ग्रहण करते। एक बात इस प्रसंग में कहूँ। उनका जन्मस्थान श्रीहट्ट (बंगला देश) था, अतएव पश्चिम बंगाल की बोलचाल की भाषा के संबंध में उनकी विशेष अभिज्ञता नहीं थी। इसीलिए कथामृत के भीतर इस प्रकार की भाषा को जब वे समझ नहीं पाते तब जो साधु उनको कथामृत सुनाते थे उनसे कहते, "जाओ, Dictionary को refer करो।" Dictionary अर्थात् मेरे पास खबर भेजते। मैं उस प्रकार की भाषा जानता, अतएव उसका अर्थ बता देता। उसी प्रकार कई बार कहते, Dictionary को खबर करो। फिर कार्यों के संबंध में भी वे हमलोगों की बात बहुत मनोयोग देकर सुनते, हमलोगों के परामर्श कई स्थलों पर ग्रहण करते तथा जब वे देखते कि वह ग्रहण योग्य नहीं है तो सीधा कहते, यह मैं स्वीकार नहीं कर सकूँगा। एक बार उन्होंने मुझसे कहा—"देखिए, किसी को यदि मधुर रूप से कोई बात समझानी-बुझानी हो तो मैं वैसा नहीं कर सकूँगा, आपके पास भेज दूँगा तथा किसी को यदि डाँटना हो तो आप वैसा नहीं कर सकेंगे, मेरे पास भेज देंगे।" इस प्रकार का व्यवहार हमलोगों के बीच था।

मैं उन दिनों (जब बेलुड़ मठ में सह-सचिव था) यहाँ (सर्वसाधारण के लिए) प्रति रविवार को कथामृत पाठ करता था। उपनिषद् आदि का भी पाठ किया था। इसको लेकर वे कहते, 'आप क्यों यह सब करते हैं? आपके पास कितने सारे कार्य हैं और उसके ऊपर वह सब हंगामा चलाते हैं।' फिर ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र में भी मैं क्लास लेता। इसके लिए भी कहते, 'आप क्यों यह झमेला करते हैं? आपके पास वैसे ही यथेष्ट कार्य हैं।' मैं पंगत में खाने जाता। वे कहते, 'आपको पंगत में जाने की क्या जरूरत है? आप कमरे में ही खाना खा सकते हैं।' जब मैं उत्तर देता कि पंगत मुझको अच्छी लगती है तब वे और कुछ नहीं बोलते। इस प्रकार का व्यवहार उनके साथ था। जब मैंने डॉक्टर के परामर्शानुसार कमरे में ही खाना खाना शुरू कर दिया था, तब खाना खाने के बाद वे मेरे पास आते और कहते, 'क्या महाशय, भोजन हुआ?' इस प्रकार खूब खुल्लम खुला व्यवहार होता। हमलोगों के बीच संबंध इतना घनिष्ठ था कि जब उनके बारे में सोचता हूँ तो ऐसा नहीं लगता कि मेरे एक Boss चले गये हैं, बल्कि लगता है मेरे बन्धु बिछुड़े हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हमलोगों ने एक ही साथ ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया था और संन्यास महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द) के ही पास हुआ था, परन्तु

स्वामी गंभीरानन्द का संन्यास काशी में हुआ था और मेरा संन्यास बेलुड़ मठ में एक महीने बाद हुआ था। अतएव संन्यास एक साथ नहीं हुआ था। परन्तु संबंध था अतिशय घनिष्ठ। कार्य के लिए महासचिव के रूप में उनको जितने सम्मान देने की आवश्यकता है उतना सम्मान मैंने उन्हें अवश्य दिया है। परन्तु, जब साधारण रूप से व्यवहार होता, तब वे एक गुरुत्वपूर्ण पद पर अधिष्ठित हैं, महासचिव हैं और मैं उनका सहयोगी हूँ—इस प्रकार का पार्थक्य मैंने कभी बोध नहीं किया एवं उन्होंने भी नहीं किया। यह घनिष्ठता हमलोगों के सम्पर्क को सब समय मधुर बनाये रखती।

हमलोगों का ध्यान तो वे रखते ही थे, साथ ही किसी अन्य साधु के भी अस्वस्थ होने पर वे बहुत व्यग्र हो उठते थे। एक समय की बात है। एक साधु सेवा-प्रतिष्ठान में भर्ती हुए थे। उनकी आँत में छोटे छोटे छिद्र हो गये थे। यह खबर उनको (स्वामी गंभीरानन्द जी को) मिली। उस समय मैं जप-ध्यान करने के लिए बैठा था। वे कभी भी इस अवस्था में मुझे नहीं बुलाते थे, परन्तु उस दिन उनसे रहा न गया। अतएव, मेरे पास आकर बोले-'सुना है, श्रीकांत की आँत में छिद्र हो गये हैं।' मैंने समझा कि इसके लिए वे अत्यन्त व्यग्र हो गये हैं, इसीलिए ऐसा कह रहे हैं।

और एक दिन की बात है। इन्स्टीच्यूट ऑफ कल्चर (कलकत्ता) से क्लास लेकर मुझे मठ लौटना था, परन्तु देर हो रही थी। तब वे अत्यन्त चिंतित हो गये थे, क्यों इतनी देर हो रही है? वहाँ फोन किया गया। उनलोगों ने कहा कि वे यहाँ से ४ बजे ही चले गये हैं। तब अत्यन्त व्यग्र होकर अपने सहयोगी स्वामी चिदात्मानन्द से उन्होंने कहा: 'देखो, निश्चय कोई दुर्घटना हुई है। पुलिस को खबर करो।' उनको कितना समझाया-बुझाया गया, किन्तु वे समझे नहीं। अंत में पुलिस को खबर दी गयी। पुलिस ने कहा: 'किसी दुर्घटना की खबर हमलोगों के पास नहीं आयी है, परन्तु रास्ते में बहुत जाम हुआ है, इसीलिए शायद देर हो रही है।' मैं रात को ग्यारह बजे मठ पहुँचा था। वास्तव में मैं ट्रैफिक जाम में फँस गया था, इसीलिए इतनी देर हुई थी। जब-तक मैं मठ में नहीं पहुँचा था तबतक वे अत्यन्त चिंतित थे। इससे यह पता चलता है कि अपने सहयोगियों के ऊपर उनका किस प्रकार का अगाध प्रेम था। यह बात स्मरणीय है।

और एक बात याद आती है। जब वे अद्वैत आश्रम (कलकत्ता) के अध्यक्ष थे तब राजकोट से कलकत्ता आने पर कई बार मैं अद्वैत आश्रम में ही ठहरता था। एक दिन मैं वहाँ था। उस दिन उनका क्लास था, किन्तु शारीरिक अस्वस्थता के कारण वे क्लास नहीं ले सकते थे। अतएव, उन्होंने मुझसे कहा: 'देखिए, आज आप क्लास लीजिए।' मैंने कहा—'मैं आनन्द के साथ यह कार्य करता किन्तु मेरा गला बैठ गया है। इस गला से क्लास नहीं लिया जा सकता है!' इसपर उन्होंने कहा: 'ठहरिए, मैं आपको दवा देता हूँ।' यह कहकर उन्होंने नाना प्रकार की दवाइयाँ लाकर दीं। मैं उनके अनुरोध को मानूँ इसके लिए मेरे दोनों हाथ पकड़कर उन्होंने कहा: 'आपको क्लास करना ही होगा।' तब मैंने क्लास लिया तथा खूब चिल्ला-चिल्लाकर बोलना पड़ा ताकि सभी सुन सकें। इतने अनुरोध की आवश्यकता नहीं थी। उनके कहने मात्र से ही मैं क्लास लेता 'फिर भी उन्होंने ऐसा किया। इस प्रकार उनका सम्पर्क, हमलोगों को अत्यन्त माधुर्यपूर्ण लगता था।

कार्य के संबंध में वे युक्तियुक्त सिद्धांत का ही पालन करते तथा कभी किसी स्थान पर समझौता करने की चेष्टा वे नहीं करते थे। जितना संभव होता सत्य एवं न्याय की रक्षा करके ही वे कार्य करते थे। इस संबंध में उनकी बहुत निष्ठा थी। कभी किसी के ऊपर अविचार नहीं करते थे एवं संघ की सेवा से उन्होंने अपने आपको कभी भी दूर नहीं रखा। अंत समय तक संघ के प्रति उनकी निष्ठा अविचल थी। उनकी सत्य निष्ठा, न्याय-निष्ठा देखने लायक थी। यद्यपि कई बाधा-विघ्न उपस्थित होते थे, किन्तु कभी उन्होंने इसके लिए समझौता

नहीं किया। सब अपने सिद्धांत पर स्थिर रहकर, सत्य एवं न्याय में प्रतिष्ठित रहकर उन्होंने कार्य किया।

उनकी विचार बुद्धि यथेष्ठ थी। किन्तु, कभी भी किसी कार्य को असम्पूर्ण रखना नहीं चाहते। अभी की अपेक्षा उस समय कार्य कम था, किन्तु वह कार्य प्रतिदिन समाप्त करना होता था। एक दिन उन्होंने देखा कि संध्या हो गयी है और मैं तभी भी ऑफिस में बैठकर चिट्ठी लिख रहा हूँ। मेरे पास आकर उन्होंने कहा—और कितना कार्य कीजिएगा, छोड़ दीजिए, दिन समाप्त हो गया है। कार्य करने से मुझे ऐसा कहा। इस प्रकार उनका व्यवहार सब समय हमलोगों के साथ मधुर रहता।

एक बार उन्होंने मुझसे कहा—'मैंने जो (ग्रन्थ) लिखा है, उसको थोड़ा देखिए।' मैंने उसे देखा था भाव-परिवर्तन की आवश्यकता नहीं समझी, किन्तु कहीं-कहीं भाषा को थोड़ा बदलवाना चाहा था। उन्होंने कहा – 'वह सब चिह्नित कर दीजिए।' कुछ दिनों तक मैंने चिह्नित भी किया था। इस प्रकार उनका पांडित्य अगाध रहने पर भी उसके लिए वे कभी गर्व-बोध नहीं करते थे।

कोई-कोई कहते हैं कि वे सब समय धैर्यपूर्वक लोगों की बातें नहीं सुनते थे। ऐसी बात नहीं है। वे बुद्धिमान् थे। इसीलिए, थोड़ी सी बात कहने पर ही वे सब समझ जाते अतएव, सब कुछ सुनने का धैर्य उन्हें नहीं रहता। फिर भी, उन्होंने कभी किसी की अवहेलना नहीं की। हमने स्वामी माधवानन्द जी के पास देखा है, वे साधारण मनुष्य की भी बात की कभी उपेक्षा नहीं करते थे। उसी प्रकार का वैशिष्ट्य स्वामी गम्भीरानन्द के जीवन में हमने देखा है।

जब मैं उनके निकट-सम्पर्क में आया तब उनके अन्दर के भाव को देखा। बाहर से वे गंभीर थे, कभी-कभी कड़ी बातें भी कहते, किन्तु अन्तर कोमल था। सभी के लिए सोचते, सभी के कल्याण की कामना करते एवं यथासंभव चेष्टा करते ताकि सभी सुविचार पायें, सभी अच्छी तरह साथ में रह पायें, जिससे मठ के किसी कार्य में विशृंखलता न हो। इस विषय में उनकी समान दृष्टि थी। मठ-मिशन के प्रति उनका प्रगाढ़ आकर्षण था। संघ के प्रति अगाध आनुगत्य – यह उनके जीवन में विशेष रूप से देखने की वस्तु थी। संघ के प्रति आनुगत्य—उसमें उनके व्यक्तित्व की कोई छाप नहीं रहती। वे निरपेक्ष रूप से सभी कार्य करने की चेष्टा करते। यह उनके दैनन्दिन जीवन में उनके कार्यों में देखा गया है। यह एक वैशिष्ट्य है जो सब के लिए स्मरणीय हैं।

वे पंडित थे, इसका परिचय उनकी ग्रंथावलि द्वारा हम पाते हैं। यद्यपि ग्रन्थ के द्वारा जितना प्रकट होता है, उससे अधिक पांडित्य था उनका। फिर भी जो लिपिबद्ध है, उसी से हम उनके पांडित्य का यथेष्ट परिचय पाते हैं। वे पंडित थे, साधु प्रकृति थे तथा विलासिता का नाममात्र भी उनके जीवन में नहीं था। उनको कठोर साधु कहा जा सकता है। किन्तु लोगों को दिखाने की कठोरता वे कभी नहीं करते। संघ के भीतर रहकर ही तपस्या का जीवन-यापन उन्होंने किया है।

हम विश्वास करें कि उनका जीवन हमलोगों के जीवन को प्रभावित करेगा एवं संघ के कार्य को सुनियंत्रित करेगा। हम श्री श्री ठाकुर, माँ, स्वामी जी के श्री चरणों में प्रार्थना करें कि उनकी कृपा से जिस संघ ने स्वामी गंभीरानन्द की तरह योग्य महाध्यक्ष पाया वह संघ उनके आशीर्वाद से पुष्ट होकर, उनके कृपा-कटाक्ष से सुलक्षित होकर दीर्घकाल तक चले, जिससे ब्रह्मलीन आत्मा का यदि पृथक अस्तित्व रहे भी तो इससे वे परितुष्ट होंगे। हम ठाकुर, माँ, स्वामीजी के चरणों में प्रार्थना करें जिससे हम यह सब दृष्टान्त ग्रहण करें, जो हमेशा हमें सतर्क करके रखें कि हमारा पथ क्या है? कैसे चलना होगा? जीवन को किस प्रकार नियंत्रित करना होगा? यही प्रार्थना करके मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

●

एक सुसमन्वित जीवन

स्वामी गहनानन्द जी महाराज
सहसचिव, रामकृष्ण मठ एवं मिशन
बेलुड़ मठ

(८ जनवरी, १९८९ को बेलुड़ मठ में आयोजित स्मृति सभा मे स्वामी गहनानन्दजी महाराज ने श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज के प्रति जो श्रद्धांजलि अर्पित की थी उसी का सारांश यहाँ दिया जा रहा है। वर्तमान में श्रीमत् स्वामी गहनानन्दजी महाराज रामकृष्ण मठ एवं मिशन के महासचिव बन चुके हैं —सं०)

मैं व्यक्तिगत रूप से पूजनीय गंभीर महाराज के सम्पर्क में नहीं आया। कार्य-कर्म के माध्यम से थोड़ा बहुत परिचय हुआ है। थोड़ा बहुत परिचय होने पर भी उनके अधीन कार्य करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ। जब वे प्रबुद्ध भारत के सम्पादक होकर मायावती गये, मैं उसके कुछ समय बाद ही मायावती की शाखा Wallington Lane (कलकत्ता) में स्थित अद्वैत आश्रम में कर्मी के रूप में गया था। वहाँ कार्य के माध्यम से उनके कुछ सम्पर्क में आया था। विशेषकर उस समय जब Wallington Lane में अद्वैत आश्रम के लिए मकान खरीदने की बात हुई थी। जब मैं सेवा-प्रतिष्ठान (रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान, कलकत्ता) में आया तब भी कार्य के दौरान उनके सम्पर्क में आया था।

एक बार मैं मालदा होकर कटिहार गया था। पूजनीय गंभीर महाराज भी साथ थे। जब जैसा तब वैसा। परिस्थितियों से पूरी तरह Adgust करके चलते उन्हें देखा है। अनेक कष्टों के बावजूद वे मालदा में थे। मालदा से कार द्वारा सारगाछी एवं वहाँ से ट्रेन पकड़कर कटिहार गया था। वह यात्रा ही कष्टदायक थी 'किन्तु उन्होंने सानन्द उसे ग्रहण किया था। वहाँ एक दिन ठहरना हुआ था। मैंने कहा था—आप कुछ बोलिए। ठाकुर को अवतार वरिष्ठ कहा जाता है; स्वामी जी प्रणाम मंत्र में यह बात कह गये हैं। उसी संबंध में आप कुछ कहिए। उस दिन उन्होंने अवतार-वरिष्ठ के संबंध में बहुत ही सुन्दर भाषण दिया।

जब मैं (सहायक सचिव के रूप में) मठ आया तब देखी उनकी समयानुवर्तिता, समय के प्रति भयानक निष्ठा। जब जो कार्य करने का समय होता उस समय वही कार्य करते थे तथा उसके हो जाने पर अन्य कार्य शुरू करते थे। उसके साथ ही यह भी देखा है कि जब वे कार्य से मुक्त हैं, तब अपने भाव में तन्मय हैं; अथवा मन ही मन जप करते हैं। यह भाव विशेष रूप से देखा जाता था। इसके साथ ही एकाग्रता एवं अनासक्ति का भाव उनमें देखा था। जब जो कार्य करते, खूब मन देकर करते। इसी कारण से किसी कार्य के संबंध में अविलम्ब परामर्श देते अथवा निर्णय लेते थे एवं वह अच्छा ही होता था।

जब किसी समस्या का समाधान नहीं पाया जाता तब वे ठाकुर से प्रार्थना करने को कहते। प्रारंभ से ही सभी मानते हैं कि ठाकुर यहाँ जीवन्त हैं। अतएव उन्हें बताना होगा। जब किसी प्रकार का विघ्न घटता तो वे कहते, निश्चय ही ठाकुर-सेवा में कहीं त्रुटि हो रही है। इसीलिए विशेषकर यह देखना होता कि ठाकुर सेवा में त्रुटि हो रही हैं एवं उसे सुधारना होता। सबके मूल में हैं ठाकुर तथा उनको बताने पर वे पथ दिखा देंगे।

उनके साथ एकबार मैं ढाका गया था। उस समय बंगला देश स्वतंत्र हुआ था। वहाँ भी जाते समय कितना कष्ट! ढाका तक कार से जाना पड़ा था। बहुत ही असुविधा हुई थी किन्तु उन्होंने सानन्द सब वरण कर लिया था। वहाँ इस घर में निमंत्रण, उस घर में निमंत्रण; हिन्दुओं के यहाँ से निमंत्रण, मुसलमानों के यहाँ से आमंत्रण। अधिकाश आमंत्रण मुसलमानों के यहाँ से आते थे। तथा बिना किसी भेदभाव के उन्होंने निमंत्रण स्वीकार किया था।

उनका जीवन ठाकुर-केन्द्रिक था। वे स्वयं खूब जप करते थे। उस वृद्धावस्था में अस्वस्थ रहने पर भी उनको नियमित रूप से जप करते देखा जाता था। समय होते ही जप करने बैठ जाते थे। यह हमलोगों में प्रत्येक के जीवन में अनुकरणीय है। ठाकुर जैसा कहते थे, एक हाथ से भगवान के श्री चरणों को पकड़ना एवं दूसरे हाथ से सांसारिक कार्य-कर्मों को करना, तभी कार्य ठीक-ठीक होंगे।

पूजनीय वीरेश्वरानन्द जी महाराज की स्मृति सभा में गंभीर महाराज उपस्थित नहीं हो सके थे क्योंकि वे उस समय सेवा प्रतिष्ठान में भर्ती थे, उन्हें पेस मेकर लगाया गया था। मैंने उनसे कहा था—'आपको वहाँ रहकर सभापतित्व करना उचित था। परन्तु आप वहाँ उपस्थित नहीं हो पा रहे हैं। यदि आप कुछ लिखकर दें तो अच्छा होगा।, पहले तो उन्होंने आना-कानी की, परन्तु बाद में एक संदेश लिखकर दिया था। मुझे ही उनका लिखा हुआ वह संदेश उस स्मृति सभा में पढ़ना पड़ा था। और आज मुझे यहाँ (गंभीर महाराज की स्मृति सभा में) बोलना पड़ेगा, यह मैंने सोचा भी नहीं था।

उनके पांडित्य की बात आपने सुनी है। वे एकसाथ ही लेखक, पंडित, वाग्मी, कार्यकर्त्ता तथा योगी सबकुछ थे। स्वामीजी इसी तरह का जीवन चाहते थे। ठाकुर के जीवन में ज्ञान, कर्म, भक्ति तथा योग का समन्वय हुआ था। ऐसा सुगठित जीवन पहले कभी आविर्भूत नहीं हुआ था। हमलोगों को अपना जीवन भी इसी तरह गढ़ना होगा क्योंकि यही हमलोगों का आदर्श है। उनका जीवन देखने पर लगता है कि उन्होंने पूरी तरह अपने जीवन को उस प्रकार सुसमन्वित बना लिया था।

बाहर से थोड़ा कड़े दिखाई देते थे परन्तु उनके भीतर कोमल स्वभाव था। वे समय नष्ट नहीं करते थे। बातचीत करते थे, बीच-बीच में थोड़ा-बहुत हँसी मजाक भी करते थे परन्तु कार्य के समय कार्य करने चले जाते थे।

आज कई लोगों के मन में सूना-सूना लग रहा है कि गुरुदेव चले गये हैं। वे चले गये हैं, किस तरह गये हैं—यह आपने सुना। वे जाने के लिए तैयार थे। वे ठाकुर के पास गये हैं। गुरु इष्ट के साथ मिल गये हैं। अतएव वे वहाँ हैं, ठाकुर ही वहाँ हैं। आइए, हम सभी ठाकुर, माँ, स्वामीजी को पकड़कर अपने-अपने जीवन को गढ़कर आनन्द में अवस्थान करें। ओम् तत्सत्।

पाप और पारा जैसे छिपाये छिपते नहीं, वैसे ही प्रेम और पवित्रता भी छिपे नहीं रहते। आग को क्या कपड़े से ढांककर रख सकते हैं? जिसका अहं-मम कुछ बचा ही नहीं, वह अपने को लोगों की निगाह से चाहे जितना बचाकर रखे, उसके भगवत्प्रेम की बाढ़ में सारा संसार डूब जाता है। वही धन्य है जो ऐसे ब्रह्मज्ञ पुरुष का आश्रय और उनकी कृपा प्राप्त करता है।

—स्वामी विरजानन्द

एक आदर्श जीवन

—स्वामी आत्मस्थानन्दजी महाराज
सहसचिव, रामकृष्ण मठ एवं मिशन
बेलुड़ मठ

(स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज ने सुदीर्घ ४६ वर्षों तक परम पूजनीय स्वामी गंभीरानन्द जी महाराज का पुण्य संगलाभ किया था। ८ जनवरी, १९८९ ई० को बेलुड़ मठ में आयोजित स्मृति सभा में उन विगत दिनों की याद करते हुए पूज्य महाराज के श्री चरणों पर जो स्मृति अर्घ्य उन्होंने अर्पित किया था, उसी का हिन्दी रूपान्तर यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—स०।)

प्राय: ४६ वर्ष पहले की बात है। मैं एक वर्ष कुछेक महीने का नवागत ब्रह्मचारी था। उस समय गंभीर महाराज 'प्रबुद्ध भारत' के सम्पादक होकर मायावती (हिमालय) आये। हो सकता है मैंने उनको पहले कभी देखा हो, किन्तु उसकी कोई छाप मेरे मन में नहीं थी। मायावती की ऐसी परम्परा थी कि मैदान से किसी के आने पर हमलोग थोड़ा आगे बढ़कर उन्हें ले आते। हम यह जानते थे कि गंभीर महाराज किस समय आश्रम पहुँचेंगे। दो या तीन मील आगे जाकर उनको गरम-गरम चाय तथा कुछ नमकीन खिलाकर ले आयेंगे—यह सोचकर हम लोग चले। किन्तु कुछ दूर जाते ही देखा वो अचानक आ धमके हैं। उस समय उनकी आयु करीब ४४ वर्षों की थी। जब वे आये तब धोती घुटने के ऊपर, कमर में एक चादर तथा हाथ में एक छोटी सी लाठी थी। उसी समय से कार्यों के माध्यम से उनके साथ मेरा सम्पर्क आरम्भ हुआ। तब से लेकर शेष काल तक, देहत्याग के एक घंटा पहले तक उनके जीवन को मैंने देखा है।

उनका नाम गंभीरानन्द था तथा देखने में भारी ज्ञानी एवं गंभीर लगते थे, मानो कोई रस नहीं है। किन्तु मैं सौ बार, हजार बार, लाखों बार कहूँगा कि बहुत ही सहज जीवन था उनका। किसी प्रकार का आडम्बर नहीं था। कभी ऐसा नहीं लगा कि इतने बड़े पंडित, मठ के इतने बड़े कर्णधार अथवा इतने बड़े तपस्वी के पास हूँ। अपनापन भाव से, सहज भाव से उनके साथ बातचीत करने की सुविधा एवं सुयोग उन्होंने दिया है। कभी भी मेरे मन में ऐसा नहीं हुआ कि मैं एक नवागत ब्रह्मचारी हूँ एवं वे "प्रबुद्ध भारत" के सम्पादक हैं।

कार्य के मामले में वे बड़े ही कड़े थे। जो कार्य वे कराते थे, उसमें देरी कमी भी बर्दास्त नहीं करते थे। ठीक समय पर कार्य करना होगा। Almost to the tip of the clock (घड़ी के काँटे के साथ-साथ)। किन्तु यही सब कुछ नहीं है। बीच-बीच में वे कहते—'अरे, पिकनिक आदि तो कुछ नहीं हो रहा है। चलो, थोड़ा घूमने चलें।' उसके बाद छ: छ: मील घूमने चले जाते। वहाँ भारी ठंढक थी। चारों ओर बाघ, भालू, सिंह आदि रहते थे तथा उनके बीच में हम केवल चार-पाँच लोग थे। मायावती का अस्पताल भी बन्द था। अभी मायावती के रास्तों पर जो गाड़ी आती है, उस समय गाड़ी आदि नहीं आती थी। लोहाघाट से पैदल चलकर आना पड़ता था। अतएव पुस्तक पढ़ने, जप-ध्यान करने तथा एक-दूसरे का मुख देखने के अतिरिक्त सब समय

हमें अद्वैत भाव से रहना पड़ता था। किसी प्रकार से द्वैतभाव की गुंजाइश नहीं थी। कोई उत्सव-त्योहार नहीं, कोई सुख-सुविधा नहीं Life was absolutely monotonous and dull (जीवन एकदम एकरस एवं सुस्त था)। किन्तु उसमें भी वे हमें आनन्द में रखते तथा बीच-बीच में कहते, चलो, घूमने चलें: हमलोगों के मन बहलाने का एकमात्र साधन था भोजन बनाना। एक-एक साधु भोजन बनाते और सभी मिलकर खाते। एक दिन की घटना है। उस समय पाक-प्रणाली पढ़कर मैं छानाबड़ा (छेने से बनी बड़ी-बड़ी मिठाइयाँ) बनाना सीख रहा था। छाना-बड़ा तैयार करते समय वह चूर-चूर हो गया। रात में गंभीर महाराज ने कहा—'अरे सत्यकृष्ण, तुम्हारा छाना-बड़ा कहाँ है?' मैंने कहा—'महाराज, छाना बड़ा तो नहीं है, सब चूर चूर हो गया है।' इसपर वे बोले-- अरे, तुम भी कैसे आदमी हो? ले आओ। घी, चीनी, छाना तथा खोआ-सब अच्छी वस्तुएँ हैं। ले आओ।' मैंने लाकर दिया तथा उन्होंने खूब खाया। उसके बाद हमलोगों ने भी खाया। उनकी निष्पक्ष धारणा क्या हुई, यह तो मैं नहीं जानता, किन्तु मैंने एक उत्साह पाया कि और भी छाना-बड़ा बनाऊँगा तथा I became a successful man (मैं एक सफल व्यक्ति हो गया)। छाना-बड़ा अच्छा बना सकता हूँ।

उस समय की एक बहुत ही स्मरणीय घटना है। मैंने पहले ही कहा है: A baby in the Rama-Krishna Order (रामकृष्ण संघ में एक शिशु)। उस शिशु को उनका लिखा हुआ कोई-कोई लेख देखना होता। हाल ही में शिक्षा समाप्त कर मैं साधु हुआ था। अतएव कई चीजें मुझे अच्छी तरह याद थीं। व्याकरण, हिज्जे, वर्णशुद्धि आदि अच्छी तरह जानता था। इसीलिए देखता कि कई स्थानों पर गलती हो रही है। परन्तु कैसे कहता कि महाराज ऐसा नहीं होता यहाँ misplace हो रहा है, यह Spelling ठीक नहीं अथवा यह ideoms चलता नहीं। किन्तु एक दिन साहस करके मैंने कहा था। कहते ही जो प्रतिक्रिया देखी आश्चर्यजनक प्रतिक्रिया! आप लोग तो जानते ही हैं कि हम अपने लेख के ऊपर दूसरों की कलम की नोंक तक लगाने देना नहीं चाहते हैं तथा गर्व से कहते हैं, अरे, मैंने लिखा है। किन्तु उन्होंने कहा—'अरे कब का पढ़ना-लिखना मैंने छोड़ दिया है। सब भूल गया हूँ। शब्द-कोश आदि देखकर सब ठीक-ठाक कर देना, मेरे पास और लाने की जरूरत नहीं है।' मैंने एक और उत्साह पाया, मेरे लिए एक और उद्दीपना हुई। इस प्रकार से उन्होंने मुझे कार्य करना सिखाया है। जोर देकर उन्होंने मुझसे लिखवाया है। यदि वे ऐसा नहीं कराते तो कभी भी मेरे द्वारा कुछ नहीं होता।

यद्यपि पहले भी उन्होंने व्याख्यान आदि दिया था किन्तु एक बार हमलोगों ने मायावती में उत्साह के साथ स्वामीजी का जन्मोत्सव मनाया था। लोग ही कितने थे? साधु, ब्रह्मचारी, कई एक पहाड़ी एवं लोहाघाट के एस० डी० ओ० गोविन्द राम काला को शायद निमंत्रित किया गया था। कुल मिलाकर करीब १४-१५ लोग थे। उस समय प्रबुद्ध भारत के सम्पादक को जब स्वामी जी के संबंध में कुछ बोलने को कहा गया तो उनका पसीना निकलने लगा। किन्तु जब वे बोले तब बहुत ही सुन्दर बोले। अंत समय तक मैंने उन्हें ऐसे ही देखा है। जब कभी उनको भाषण देने के लिए कहा जाता, उनका मुख सूख जाता। किन्तु जब भाषण देते तो, सारतत्व बोलते एवं सुन्दर बोलते। इस प्रकार मायावती में जो योगसूत्र स्थापित हुआ, परवर्ती काल में भी उसकी रक्षा हुई थी। इसी संबंध में दो-एक बात कहूँगा।

आपलोग तो जानते ही हैं कि वे एक सुलेखक, सुपंडित थे एवं उनका जीवन रामकृष्ण-विवेकानन्द-सारदा के भावादर्श से उद्दीप्त के समान था। जब उन्होंने श्री श्री माँ की जीवनी लिखी, उस समय मैं अपने आप को उनसे मुलाकात करने से रोक नहीं सका तथा छोटे मुँह से उनका अभिनन्दन प्रकट करने गया। किन्तु

उनकी जो निरभिमानिता थी, उसे शब्दों द्वारा आपको समझा नहीं सकता। इतने बड़े ब्रह्मसूत्र का अनुवाद उन्होंने अंग्रेजी में किया। मैं उस समय रंगून में था। आवेश में आकर उन्हें पत्र लिखा, किन्तु वे एकदम निर्विकार। उनके मुख से कभी ऐसा नहीं सुना—अरे, मेरी पुस्तक देखी है? मैंने कैसा लिखा है? इत्यादि जैसा कि हमलोग किया करते हैं। इस प्रकार की बातें भूलकर भी उनके मुख से नहीं सुनों। जब कभी मैं आवेग के साथ उनसे बातचीत करने गया तब देखा, मैं तो एक पाषाण से बात कर रहा हूँ। सब सुनकर वे कहते - देखो, ठाकुर, माँ, स्वामीजी जितना कराते हैं उतना करता हूँ। यह कहकर वे अन्य विषय की बातचीत करने लगते।

परवर्ती काल की एक घटना याद आ रही है। मैं उस समय राजकोट में था। उनको पोरबन्दर, द्वारका, सोमनाथ आदि दिखाने ले गया था। ज्ञानी पुरुष के रूप में जिनका परिचय, जो बड़े पंडित, जो खूब विचार-सम्पन्न व्यक्ति तथा जिनके भीतर हम साधारणतः आशा नहीं करते कि एक भक्ति आप्लुत मनुष्य छिपा हुआ है, उनको ले गया तीर्थ कराने। वहाँ देखा—द्वारका में बारम्बार प्रणाम, सोमनाथ में प्रणाम। पोरबन्दर में जिस घर में स्वामी जी ठहरे थे उस घर में उन्हें ले गया। वह सब देखकर उनका जो रोमांच, उनकी जो भाव-विह्वलता थी वह पास में रहने पर ही समझी जा सकती है। जिस घर में स्वामी जी रहते थे, वहाँ उनका एक बड़ा तैलचित्र रखा हुआ है तथा वह घर अभी सरकार का हो गया है।

फिर एक दिन कहा—महाराज, यहाँ जब आये हैं तो गिर वन में सिंह देखने नहीं जायेंगे? मैंने मन ही मन सोचा वे तो अभी महासचिव हैं, मायावती के गंभीर महाराज तो हैं नहीं। अतएव कहीं यह न कह बैठें—तुम मुझको लेकर यह सब क्या आरम्भ कर रहे हो? किन्तु देखा, मायावती में जिस प्रकार जंगल में जाते। प्यारी लाल शिकार करता। एक दिन उसने कोई जानवर मारा था जिसे वृक्ष पर लटकाया गया था तथा दूसरे दिन उन्होंने कहा—चलो, चलो, देखने जायें। ठीक उसी प्रकार कहा—चलो, चलो, जाऊँगा। फिर हम लोग सिंह देखने गये। एक सिंह, एक सिंहनी एवं एक बच्चा। उन्हें देखकर वे बहुत खुश हुए। जालाराम वहाँ के एक जाग्रत देवता हैं। जालाराम के स्थान पर ले गया। वह भी देखा श्रीहट्ट (जन्मस्थान) के उस भक्त ने। मैंने उनसे जालाराम की कहानी बतायी। उन्होंने सब कुछ में विश्वास किया तथा दर्शन-स्पर्शन करके खूब गदगद हुए थे। उनको लेकर और भी तीर्थ गया था। उस प्रसंग पर बाद में आऊँगा।

गुजरात के सूरत, भरूच, एवं बड़ौदा—इन तीन जिलों में एक प्रलयंकरी बाढ़ आयी थी। उस बाढ़ में रामकृष्ण मिशन की ओर से वृहत् पैमाने पर राहत कार्य हुआ था। स्वामी हिरण्मयानन्द जी उस कार्य में थे तथा मैंने भी सुयोग पाया था। गंभीर महाराज (महा सचिव के रूप में) तथा पूजनीय वीरेश्वरानन्द जी महाराज वहाँ गये थे। महासचिव महाराज सूरत में रात बितायेंगे। जिस कैम्प में हमलोग रहते थे वह भुतहा घर था। उसका नाम ही था Haunted House. रहने का घर एक जगह रसोई घर दूसरी जगह तथा स्नान आदि करने के लिए बाहर एक कुआँ था। शौचालय की कोई व्यवस्था नहीं थी। हमलोग मैदान में जाते। महासचिव महाराज आ रहे हैं, इतने बड़े पुरुष। इसीलिए हमलोगों ने सरकारी अतिथि भवन में उनके ठहरने की व्यवस्था कर रखी थी। वे आये। उनको खिलापिलाकर तथा कैम्प दिखाकर कहा—अब हम उदना जायेंगे। वहाँ आपके ठहरने की व्यवस्था की गयी है। इतना सुनते ही उन्होंने कहा—'क्या कहते हो? मैं जाऊँगा और तुमलोग?' मैंने कहा—'महाराज, हमलोग तो कैम्प में रहते हैं। आप वहाँ रहेंगे तथा साथ में एक व्यक्ति रहेगा।' परन्तु उन्होंने एकदम अस्वीकार कर दिया। हमलोगों ने कितना अनुनय-विनय किया—'महाराज, यहाँ बहुत ही कष्ट होगा। सामने मैदान में कुआँ देख रहे हैं उसमें से जल भरना होगा

तब आप स्नान करेंगे तथा शौच आदि के लिए मैदान में जाना होगा अथवा उस नरक (टेंट) में जाना होगा। परन्तु उन्होंने कहा—'तुमलोग यदि ऐसा कर सकते हो तो मैं क्यों नहीं कर सकूंगा। तुमलोग मेरे भाई यहाँ हो।' कैम्प में जो लोग थे प्रत्येक के जीवन में एक अद्भुत शिक्षा हुई कि साधु जीवन में किस प्रकार की कष्टता की आवश्यकता है, साधु जीवन में त्याग एवं कष्ट स्वीकार करने की जरूरत है। रामकृष्ण मिशन के जो कर्णधार हैं, वे कैसे रहते हैं, इसका एक उदाहरण हमने देखा। इस प्रकार और भी कई घटनाएँ हैं। स्वामी जी ने कहा न, यदि किसी मनुष्य के संबंध में विचार करना हो कि वह किस प्रकार का मनुष्य है तो उसके छोटे-छोटे कार्यों, दैनन्दिन जीवन की जो कर्म-सूची है उसी के माध्यम से देखना होगा कि उसका चरित्र कैसा है?

इसके बाद सन् १९७५ की बात है। जब मुझे यहाँ (बेलुड़ मठ) लाया गया। उसके पहले मैंने बाहर ही बाहर कार्य किया था। इस संघ ने कृपा करके अपनी सेवा करने का सुयोग नाना रूप से मुझे दिया है एवं वैसा करके मैंने आनन्द भी पाया है। यहाँ आने के बाद मैं उनके (गंभीर महाराज) के व्यवहार को देखकर अवाक हो गया। इन्होंने स्वयं मुझे ले जाकर उस घर को दिखाया जिसमें मुझे रहना था तथा कहा, 'देखो, यह बेलुड़ मठ है। यहाँ सबकुछ मिलेगा, कष्ट करने की कोई जरूरत नहीं है। किन्तु इसके लिए कभी-कभी बोलना पड़ेगा।'

जब उन्होंने मुझे कार्य शुरू करने के लिए कहा तब मैंने कहा—महाराज, मैं सेवाकार्य करने के लिए पहले यहाँ आया था। ठाकुर का बर्तन माँजना तथा उसके बाद पूजनीय शंकरानन्द महाराज की कुछ दिनों तक सेवा करने का कार्य था। उसके बाद घूमफिरकर मायावती गया तथा पुनः पूजनीय विरजानन्द महाराज की सेवा-कार्य में ही आया। जो कार्य भी किया सभी सेवा-कार्य थे। किन्तु मठ के प्रधान कार्यालय का कार्य मैं कुछ नहीं जानता हूँ। मैं यह सब किस प्रकार करूँगा? इसपर उन्होंने कहा अरे, तुमको किसी प्रकार की चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। तुम आज से ही कार्यारम्भ करो। जिस दिन मैं आया उसके दूसरे दिन ही समयानुसार मुझे उनके पास हाजिर होना पड़ा। उसके बाद उन्होंने मुझे तैयार कर लिया। हाथ पकड़कर उन्होंने मुझे कार्य करना सिखाया।

हमलोगों का नियम था कि गर्मी के दिनों में सुबह आठ बजे तथा जाड़े के दिनों में साढ़े आठ बजे उनके पास हाजिर होना पड़ेगा। जिस दिन ठीक आठ बजे अथवा साढ़े आठ बजे उपस्थित नहीं हो सका उस दिन वे कुछ बोलते तो नहीं, परन्तु उनके पास एक छोटी सी घड़ी थी, वह घड़ी हमलोगों की तरफ घूमाई हुई रहती जिससे हमलोग समझ जाते कि आने में देर हो गयी है। एक बार मैंने उनसे कहा भी था—आप बहुत ही कड़े हेडमास्टर हैं। दो-एक मिनट तो देरी होगी ही। इसपर वे कहते नहीं, नहीं, देखो, समय में शैथिल्य होने पर बहुत गड़बड़ी होती है। ढेर सारे पत्र हमलोगों के पास आते हैं। फिर मीटिंग में एक सिद्धान्त स्थिर किया जाता है कि किसके पास क्या लिखा जायगा। सुबह में उन्होंने कहा—अरे सत्यकृष्ण, तुम यह लिखना अरे गीतानन्द (सह सचिव) तुम यह लिखना। प्रायः साढ़े नौ अथवा दस बजते-बजते हमलोग नीचे आ जाते। इसके बाद कभी-कभी कार्य का इतना चाप पड़ा या बाहरी विक्षेप इतना आ गया कि या तो हमलोग पत्र लिख नहीं पाये अथवा हमलोगों के Draft देने पर जो उनके पास पत्र ले जायेगा वह कर नहीं सका। वे ग्यारह-साढ़े ग्यारह के बीच चिट्ठी पर हस्ताक्षर करते। इसी बीच खाने की घंटी लग गयी और हमलोग खाने चले गये। खाना खाने के बाद थोड़ा विश्राम करके वे बुला भेजते तथा जाने पर कहते, अरे चिट्ठी जो लिखने के लिए कहा था? जब कहता महाराज, कितना घंटा हुआ, समय नहीं लगता? तब वे कहते—नहीं, नहीं, कार्य कभी भी फेंककर नहीं रखना। बराबर देखी है, उनकी समयानुवर्तिता। समय की रक्षा करने में वे मास्टर थे। ठीक इसी प्रकार की निष्ठा सभी मामलों में थी। जप-

ध्यान, पाठ तथा कार्य सभी घड़ी के काटे की तरह चलते थे। ऐसा अनुशासित जीवन शायद ही कभी देखा जाता है।

वे मुझसे २० वर्ष बड़े थे। Just imagine (थोड़ी कल्पना कीजिए)। वे कितने बड़े थे, परन्तु जब हमलोग उनके साथ कार्य करते तो वे स्वाधीन रूप से हमलोगों की राय पूछते। कभी-कभी उनका मत नहीं भी रहता, सहयोगियों का ही मत रहता। फिर यह भी देखा है कि प्रयोजन होने पर उनके चरित्र में एक भारी दृढ़ता थी। किसी प्रकार भी उन्हें झुकाया नहीं जा सकता। एक बार जिसे वे पकड़ते उसे छोड़ते नहीं। आवश्यकता पड़ने पर वे कठोरवाणी भी दे सकते थे, भारी धमक देते। ऐसी धमक कि वहाँ से भागने पर ही रक्षा होती। किन्तु उतना ही करके छोड़ नहीं देते, वे Compensation भी करते। ऐसी बात नहीं कि उनके अन्दर दया-माया नहीं थी, यथेष्ठ दया-माया थी। इसके कई उदाहरण हैं। उनके साथ कार्य करने में वह कभी भार-स्वरूप नहीं लगता। आजकल जो प्रचलित शब्द है तनाव, वह तनाव नहीं था। कार्य के दौरान शायद कभी-कभी थोड़ी-बहुत उत्तेजना होती, किन्तु तनाव नहीं था। कार्य ठीक रूप से होता जाता और उनमें असीम आनन्द तथा उद्दीपना होती।

सन् १९७८ की पश्चिम बंगाल की बाढ़ की बात याद आती है। उस बाढ़ के समय उनका क्या उत्साह था! कलकत्ता में रामकृष्ण मठ-मिशन के जितने शाखा-केन्द्र हैं वहाँ के सभी को बुलाकर कहते—बोलो सभी, वहाँ पर राहत कार्य करेंगे। उस समय रुपया-पैसा हाथ में नहीं लाया था। जैसे भी हो करना होगा एवं वह कार्य बहुत ही अच्छा हुआ था। इस प्रकार और भी राहत कार्य हुए हैं। आन्ध्र प्रदेश में भी राहत कार्य हुआ है। बाद में वे आँख से ठीक-ठीक देख नहीं पाते थे, फिर भी वे वहाँ गये थे।

और एक बात याद आती है। मैं नहीं जानता था कि अरुणाचल प्रदेश के ऊपर उनकी विशेष दृष्टि थी। महासचिव के पद से जब उनका निवृत होना ठीक हो गया था तब उन्होंने मुझे कहा—देखो, और एक बार नरोत्तमनगर एवं अलांग देखने की मेरी इच्छा है, परन्तु इस शरीर को लेकर मुझसे यह संभव नहीं है। मेरी तो अवस्था देख ही रहे हो। मैंने कहा -महाराज, चिन्ता क्यों करते हैं? हमलोग आपको ले जायेंगे तथा आप सब देख आयेंगे। फिर बहुत कष्ट करके वे वहाँ गये थे। कितने आश्चर्य की बात! उनके शरीर त्याग के एक घंटा पहले हम उनके पास गये थे। उन्होंने कहा—बोलो, मठ की खबर बोलो। हमलोगों के कुछ कहने के पहले ही उन्होंने पुनः पूछा—अरुणाचल में तुमलोगों को एक शाखा केन्द्र खोलने की बात थी न? 'हाँ, महाराज, बमडिलाग के संबंध में बातचीत चल रही है।' उन्होंने सुना। इसके बाद राहत कार्य आदि की बातें हुईं, जिनका मेरे मन पर गंभीर प्रभाव पड़ा। उन्होंने अरुणाचल की बात बहुत पहले कही थी एवं अन्तिम दिन भी खास करके अरुणाचल की बात पूछी।

मैंने पहले ही कहा है कि उनके साथ और भी तीर्थ गया था जिस प्रसंग पर बाद में आऊँगा। यह एक ऐसी स्मृति है जिसपर कई लोग विश्वास नहीं करेंगे, परन्तु जो करेंगे वे अपने जीवन में एक बड़ी प्रेरणा पायेंगे। उनके साथ पशुपतिनाथ दर्शन करने काठमाण्डू गया था। उनके साथ गंगोत्री गया था। गंगोत्री में भरत महाराज भी थे। पशुपतिनाथ में भरत महाराज, प्रभु महाराज (स्वामी वीरेश्वरानन्द जी) एवं गंभीर महाराज एक साथ थे। गंगोत्री में भरत महाराज एवं गंभीर महाराज ने गंगापूजा की थी। वह एक अपूर्व दृश्य था। मेरे मन के वीडियो में वह अभी भी ठीक है। पशुपतिनाथ में भी बहुत आनन्द हुआ था। किन्तु अमरनाथ की जो अभिज्ञता है उसका सबसे बड़ा साक्षी मैं ही हूँ। यह बात मैं गर्व के साथ कह रहा हूँ। अमरनाथ की गुफा में जाकर दर्शन करना हो गया है। गंभीर महाराज को डंडी करके ले जाया गया था। किसी प्रकार घुसकर पूजादि करके वे डंडी में आकर बैठे हैं। शरीर कम्बलादि से ढँका हुआ है। अमरनाथ की गुफा की दीवार पर जो सादा-सादा

भाग है उसपर हाथ लगाने से सफेद चूर्ण आता है, भस्म। मैं अमरनाथ का वह भस्म हाथ में लेकर आया हूँ। आकर देखा वे डंडी में बैठे हुए हैं। 'महाराज' अमरनाथ का भस्म लगा रहा हूँ।'—यह कहकर मैंने उनके माथे पर वह लगा दिया। मैंने इस समय यह ख्याल ही नहीं किया कि वे किस भाव में हैं। मैं तो अपने भाव में मस्त था। उसके बाद देखा, वे बात कर रहे हैं खूब विह्वल होकर, भाव से परिपूर्ण होकर साधारण भाषा में प्रायः रुद्ध स्वर से कह रहे हैं 'अरे, अरे सत्यकृष्ण, क्या देखकर आया, जानते हो? देखा, ठाकुर बैठे हुए हैं, ठाकुर बैठे हुए हैं। मैं तो बाबा अमरनाथ को नहीं देख पाया; ठाकुर को देखा।' मैंने कहा, 'महाराज, आपने देखा, आपका सौभाग्य—यह कहकर मैंने उन्हें बारम्बार प्रणाम किया।

महाध्यक्ष होने के बाद उनका एक आचरण मुझे नया लगा था। बालिदेयालगंज (हुगली, प० बंगाल) में एक Community Hall बना था। गंभीर महाराज सहाध्यक्ष के रूप में वहाँ गये थे तथा दीक्षा भी दी थी। राहत शिविर में बैठकर दीक्षा देना, यह मुझे मालूम नहीं था। राहत कार्य (सन् १९७८ का बाढ़ राहत कार्य) देखने महाराज लोग गये हैं किसी आश्रमादि में ठहरे हैं एवं दीक्षा हुई है। परन्तु राहत कैम्प में ही बैठकर दीक्षा हो गयी, यह एक बहुत ही अद्भुत घटना है।

वे कितने बड़े विद्वान, साधु, सर्वजन पूजित व्यक्ति एवं गंभीर थे—गंभीरानन्द। किन्तु उनके भीतर जो कोमल अंश था उसका एक उदाहरण देता हूँ। दीघरा ग्राम (बालिदेयालगंज के पास, में एक मजूमदार परिवार है, आरती एवं शंभु मजूमदार। वह (आरती) ग्रामीण महिला हैं। नितान्त ग्राम्य। किन्तु वह अपने गुरुदेव को नाना प्रकार की बातें कहती हैं। अपने खेत का आलू गत वर्ष यहाँ ले आयी थी। कभी धान ले आयी, कभी कुम्हड़ा ले आयी, कभी और कुछ ले आयी। जिस दिन हमलोग कैम्प से चलेंगे उस दिन उसने जिद पकड़ी, मेरे घर जाना ही होगा। बलिदेयालगंज से कालीगंज आने के लिए दीघरा ग्राम के पास से आऊँगा, किन्तु उसके गाँव तक जाने का रास्ता अच्छा नहीं था। कच्ची मिट्टी का रास्ता था। किन्तु वह छोड़नेवाली नहीं थी। और देखा गुरुदेव, ज्ञानी गुरुदेव धीरे-धीरे नरम हो गये तथा बोले—अरे सत्यकृष्ण, जब वह मान ही नहीं रही है तो चलो उसके यहाँ से होते जायेंगे। फिर हमलोग उसके यहाँ गये। फूस का घर था। काठ की एक पिढ़िया, ऊपर एक फटा कपड़ा तथा पास में एक गमला रखा हुआ था। महाराज के जाते ही वह बोल उठी—आइए, आइए, मेरे घर आये हैं! यह कहकर उसने गुरुदेव को पिढ़िये के ऊपर थप करके बैठा दिया। हमलोग आश्चर्य चकित होकर सब देख रहे थे। उसके बाद मौजा आदि खोलकर हर हर करके गमले से जल ढालकर गुरुदेव के चरण धोये चरणामृत पान किया तथा गुरुदेव एकदम स्थिर, धीर, गंभीर! उनकी यह अद्भुत लीला वहाँ देखी। क्या बात है जानते हैं? यह सब देखने से मन में कुछ-कुछ प्रभाव होता है। यह संघ स्वामीजी के समय से चल रहा है एवं अभी १५०० वर्षों तक चलेगा। हमलोग भूलवश सोचते हैं कि यह महाराज, वह महाराज इस संघ को चलाते हैं। चलाते हैं वास्तव में वे (श्रीरामकृष्ण) जो वहाँ (मन्दिर में) बैठे हैं। जिसको लेकर जो कराना है उसकी गर्दन पर वे सवार हो जाते हैं। वीरेश्वरानन्द महाराज को भी सहसचिव के रूप में देखा है। महासचिव के रूप में देखा है एवं फिर गुरुदेव के रूप में देखा है। कहाँ का मनुष्य क्या हो जाता है! गंभीर महाराज को भी देखा है। उनका पैर अच्छी तरह से धो देती है तथा एक गमछा से पैर पोंछ देती हैं एवं वे उसको बहुत-बहुत आशीर्वाद करके हँसी-खुशी लौट आते हैं। यह जो भाव है, वह वहाँ से आता है। जब जिसको ठाकुर पसन्द करते हैं, यह भाव उसको आधार करके चलता रहता है। गंभीर महाराज के जीवन में भी यह विशेष रूप से दिखाई देता है।

और एक बात कहूँ। मठ-मिशन में नाना प्रकार की समस्याएँ आती हैं। कभी-कभी खूब जटिल समस्याओं के सम्मुखीन होना पड़ता है। कुछ दिन पहले भी एक

प्रसंग उठा था। उस प्रसंग में बातचीत चल रही थी। जब उनसे पूछा गया—महाराज, क्या होगा? तब उन्होंने कहा—'क्या होगा, और तो कोई दिग्दिगन्त तो देखता नहीं हूँ, मन्दिर के बाबू (श्री रामकृष्ण) यदि कुछ नहीं करें तो नहीं होगा। सभी मिलकर उनसे प्रार्थना करो; मैं भी प्रार्थना करता हूँ।' यही असली बात है, यही हृदय की बात है। यही कहने जा रहा हूँ कि गंभीर महाराज के भीतर से जिस महाशक्ति ने लीला की है, क्रीड़ा की है, जिससे हम सभी अनुप्राणित हुए हैं (उनकी पुस्तकों को पढ़कर, उनका सान्निध्य लाभ कर, उनके प्रसंग को सुनकर) उसके मूल में हैं ठाकुर, माँ, स्वामीजी। ये लोग भावघन मूर्ति होकर आये थे। वही भाव चल रहा है, तरंग चल रही है, वह तरंग जहाँ तरंगायित होती है वे धन्य हैं एवं उनके संस्पर्श से हम सभी धन्य हो जाते हैं।

गंभीर महाराज यह जानते थे कि वे और जीवित नहीं रहेंगे। 'दिसम्बर" १९८८ को उन्होंने मुझसे कहा था—अब जीवित नहीं रहूँगा। मैंने कहा—क्यों महाराज? कैसे तो आप घूमफिरकर आ गये हैं। इसपर उन्होंने कहा—हाँ, घूमफिरकर आ गया हूँ यही, किन्तु जीवित नहीं रहूँगा। इसके बाद उनकी मांसपेशियों को दबा-दबाकर मैंने उनसे कहा—महाराज, आपकी मांसपेशियाँ तो कितनी सख्त हैं, कितना सुन्दर कार्य कर रही हैं और आप कहते हैं अब रहूँगा नहीं, 'नहीं रे! मैं यह देख रहा हूँ कि और जीवित नहीं रहूँगा'—यह उनकी असंदिग्ध वाणी थी। यह ११ दिसम्बर की बात है। उसके बाद क्या होगा वह तो आप जानते ही हैं। जैसा कि पहले ही कहा है, ठाकुर ने उन्हें पसंद किया था; ठाकुर-माँ-स्वामीजी ने कृपा की थी। जितना प्रयोजन, सब उनके द्वारा करा लिये हैं। हमलोग कोशिश करेंगे कि जो भाव, जो आदर्श जीवन वे दिखा गये हैं, उनका हम जितना कर सकते हैं उतना अनुसरण करेंगे, ठाकुर-माँ-स्वामीजी हमें वह शक्ति दें।

*

सद्य प्रकाशित

नवीन प्रकाशित

स्वामी अभेदानन्द प्रणीत

मृत्यु के पार

मृत्यु होने पर मनुष्य कहाँ जाता है? किस अवस्था में रहता है? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं? परलोक में जीव का अवस्थान किस किस प्रकार रहता है? यह सभी जिज्ञासा आदिम युग से ही मानव मन को आन्दोलित करती रही है। इन सभी की मीमांसा स्वामी अभेदानन्द महाराज ने अपने ग्रन्थ 'मृत्यु के पार" में अपनी अभिज्ञता के आधार पर की है। इहलोक के निगूढ़ रहस्यों का परिचय देते हुए उपर्युक्त प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर इस ग्रन्थ में उन्होंने दिया है। मानव एवं प्राणीमात्र की आत्मा का विनाश नहीं है, किन्तु जीव भाव का क्रमविकास होता है एवं मृत्यु क्रम विकास की ही प्रतिछवि है। मनुष्य जन्म-मृत्यु के मध्य विचरण करते हुए ही परम रहस्यमय निज आत्मसत्ता की उपलब्धि करता है।

डिमाई साईज, पृष्ठ संख्या १६८ : मूल्य—बीस रुपया।

प्रकाशक :

श्रीरामकृष्ण वेदान्त मठ

१९-बी, राजाराजकृष्ण स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००६

आध्यात्मिक जगत के एक विशिष्ट पुरुष

—भारत साधु समाज
उत्तराखण्ड (हिमालय)

श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्द जी की महासमाधि का संवाद पाकर उत्तराखण्ड के भारत साधु-समाज ने ३० दिसम्बर १९८८ को अपराह्न में तीन बजे विवेकानन्द भजनाश्रम, उर्जैलि, उत्तरकाशी (हिमालय) में एक महती सभा में समवेत होकर रामकृष्ण मिशन के इस एकादश महाध्यक्ष के प्रति अपनी गंभीर श्रद्धा निवेदित की। भारत साधु-समाज के सभापति श्रीमत् स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज की अध्यक्षता में इस सभा का आयोजन हुआ था। सभा के मुख्य अतिथि थे स्वामी सूर्यानन्द जी महाराज।

सभा के प्रारम्भ में समवेत साधु-वृन्द एवं भक्त-मण्डली ने दो मिनट का मौन धारण कर ब्रह्मलीन महाराज के प्रति श्रद्धा व्यक्त की। इसके बाद स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज ने श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज के अति उज्ज्वल कर्ममय जीवन पर प्रकाश डाला।

उन्होंने कहा: वर्तमान आध्यात्मिक जगत में स्वामी गंभीरानन्द जी महाराज एक विशिष्ट व्यक्ति थे। प्रधान-प्रधान उपनिषदों एवं ब्रह्मसूत्र का अंग्रेजी अनुवाद, बंगला भाषा में उपनिषद ग्रन्थावली का संकलन, श्री श्री माँ सारदादेवी एवं स्वामी विवेकानन्द की प्रामाणिक जीवनी लिखकर उन्होंने देश विदेशों के असंख्य अध्यात्म-पिपासुओं के लिए एक विशिष्ट अवदान रख छोड़ा है। उन्होंने उल्लेख किया, ब्रह्मलीन महाराज जी जब उत्तर-काशी आये थे, तब उनके सान्निध्य में जो जो आये थे वे सभी उनके अमायिक एवं मधुर व्यवहार से मुग्ध हुए थे। स्वामी गंभीरानन्द जी महाराज की महासमाधि समूचे साधु-समाज एवं देश के लिए एक अपूर्तिकर क्षति है। उनकी महान पवित्र आत्मा सत्-चित्-आनन्द रूप ब्रह्म में चिर शांति में विराजमान हो।

प्रसंगतः उल्लेख किया जा सकता है कि रामकृष्ण संघ के दशम महाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज के महाप्रयाण पर भी उत्तराखण्ड के भारत साधु-समाज ने इसी प्रकार की सभा आयोजित की थी।

(उद्बोधन, फाल्गुन १३९५ से साभार रूपान्तरित)

"साधारण लोग 'थैलामर' धर्म की बातें करते हैं पर उसका 'रत्तीभर' भी जीवन में नहीं उतारते। ज्ञानी व्यक्ति बोलते बहुत कम हैं किन्तु उनका सम्पूर्ण जीवन व्यवहार में उतरे धर्म की ही अभिव्यक्ति होता है।"

—श्रीरामकृष्ण देव

सुख सागर के हंस स्वामी गम्भीरानन्द

सन् १९२३ का मार्च महीना। सौम्य युवक अचानक काशी आ उपस्थित हुआ। उसके एक शिक्षक रामकृष्ण मिशन के वाराणसी केन्द्र में रहते हैं। वे संन्यासी हैं। पूछने पर पता चला कि वे अभी वहाँ नहीं है –अन्यत्र गये हुए है। रामकृष्ण संघ में योगदान करने का उद्देश्य था उस युवक का। केन्द्र के अध्यक्ष से उसने अपनी वह महती इच्छा प्रकट की। परन्तु अध्यक्ष राजी नहीं हुए क्योंकि उस समय चारों ओर राजनैतिक दंगे एवं हमले चल रहे थे। सरकार की तीक्ष्ण दृष्टि रामकृष्ण मिशन पर थी। इसीलिए किसी अपरिचित को संघ में लेने का नियम नहीं था। अध्यक्ष ने कहा : "हमलोग किसी अपरिचित लड़के को नहीं रखते हैं। तुम तो ज्यादे पढ़े-लिखे हो, सेवाश्रम में तुम्हें असुविधा होगी। तुम बेलुड़ मठ चले जाओ।" युवक का बुद्धिमत्ता पूर्ण उत्तर था : "महाराज, मैं अपरिचित हूँ इसलिए आप मुझे योगदान करने की अनुमति नहीं दे रहे है। मैं यदि बेलुड़ मठ जाऊँ तो वहाँ पर भी एक ही समस्या उपस्थित होगी। क्या आप मुझे एक परिचय-पत्र देने की कृपा करेंगे।" अध्यक्ष ने लाचारी प्रकट करते हुए कहा : "जब मैं तुमको जानता ही नहीं हूँ तो परिचय-पत्र कैसे दूँ।" प्रत्युत्पन्नमति युवक ने आवेदन किया; "महाराज, क्या आप इतना लिख देंगे कि मैं स्वामी जगदानन्द जी की खोज में काशी आया था। आप यह अवश्य कर सकेंगे।" अध्यक्ष राजी हो गये। वह शान्त, सौम्य एवं गम्भीर युवक ही परवर्ती काल में रामकृष्ण मठ एवं मिशन के ग्यारहवें महाध्यक्ष स्वामी गंभीरानन्द जी के रूप में सुपरिचित हुआ।

स्वामी गम्भीरानन्द जी का पूर्व नाम था यतीन्द्र नाथ दत्त। उनका जन्म सन् १८९९ की ११वीं फरवरी को श्रीहट्ट जिले (अब बंगला देश) के साधुहाटि नामक गांव में हुआ था। पिता दीननाथ दत्त स्थानीय जमींदार थे तथा माता तारासुन्दरी देवी बड़ी ही धर्मपरायणा थीं। उनका शाक्त परिवार था। तारासुन्दरी देवी प्रतिदिन घंटों तक ध्यान-जप में मग्न रहा करती थीं। कभी-कभी वह अपने हाथों से भगवान शंकर की मूर्त्ति बनाती थीं तथा उसकी पूजा कर निकटवर्ती तालाब में विसर्जन कर देती थीं। यतीन्द्र अपने माता-पिता की अंतिम सन्तान थे। उनके दो बड़े भाई एवं एक बहन थीं। उनके नाम थे जीतेन्द्र, सुरेन्द्र एवं सुषमा। उनमें से अभी कोई भी जीवित नहीं हैं।

यतीन्द्र एक बड़े संयुक्त परिवार के सदस्य थे। बचपन में ही पिता की मृत्यु हो गयी थी। इसीलिए सुसम्पन्न मामा के घर ही यतीन्द्र का लालन-पालन हुआ। बड़े मामा अक्षय कुमार दास उनके अभिभावक थे क्योंकि उनके एक भी चाचा नहीं थे। मामा के घर श्री मदनमोहन जी की नित्यपूजा होती थी तथा श्री दुर्गापूजा एवं कालीपूजा भी बड़ी धूमधाम से मनायी जाती थी। ऐसे ही परिवेश में यतीन्द्र का बचपन गुजरा। पहले से ही वे धीर, स्थिर, गम्भीर एवं शान्त प्रकृति के थे।

साधुहाटि में यतीन्द्र की पढ़ाई आरम्भ हुई। वे वहाँ के मौलवी बाजार हाई स्कूल में भर्ती हुए। वे बड़े मेधावी छात्र थे। थोड़े समय के लिए शिलाँग के सरकारी हाई स्कूल में विद्याध्ययन करने के पश्चात् पुनः वे मौलवी बाजार स्कूल में आ गये। सन् १९१७ में बड़ी दक्षता के साथ प्रवेशिका परीक्षा में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुए। इस परीक्षा में उन्हें छात्रवृत्ति मिली थी। उच्च शिक्षा के उद्देश्य से यतीन्द्र कलकत्ता आये। यहाँ पर उन्होंने स्कॉटिश चर्च कालेज में प्रवेश पा लिया। कॉलेज के पास में ही स्थित अगिलवी छात्रावास में वे रहने लगे। उनके सहपाठियों में थे साहित्यक एवं पत्रकार श्रीसजनीकान्त दास और साहित्यिक श्रीगोपाल

हालदार। छात्रावास में प्रत्येक को अलग-अलग एक-एक कमरा मिलता था। श्री गोपाल हालदार ने परवर्ती काल में कहा : 'हमलोग आपस में साहित्य, धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि के सम्बन्ध में विवेचनाएँ किया करते थे। यतीन्द्र उन विवेचनाओं में बड़ी दिलचस्पी के साथ भाग लेते थे। बाकी समय वे अपने कमरे के दरवाजे को हमेशा बन्द रखकर स्वाध्याय में लीन रहते थे।' छात्रावस्था में यतीन्द्र फुटबाल, वॉलीबाल एवं नौका-विहार आदि में पारंगत थे। परवर्ती जीवन में भी वे रेडियो से खेलों का आँखों देखा हाल सुना करते थे। यहाँ तक कि अपनी जीवन-संध्या में भी वे खेलों की खबर रखते थे। घर से बड़े भाई रुपये भेजते थे तथा स्कॉलरशिप के कुछ पैसे मिलाकर वे अपनी पढ़ाई का खर्च निकाल लेते थे। सन् १९२२ में अर्थशास्त्र में ऑनर्स के साथ उन्होंने बी० ए० की परीक्षा पास की। बी०ए० में उनके विषय थे अंग्रेजी, बंगला, गणित एवं अर्थशास्त्र।

स्नातक की उपाधि प्राप्त कर यतीन्द्र वर्मा के रंगून शहर में सैन्य विभाग के 'एकॉउण्ट ऑफिसर' के रूप में सेवारत हुए। वहाँ पर सैनिकों की जीवन-चर्चा देखकर यतीन्द्र ने जीवन के संबध में गंभीरता पूर्वक विचार करना शुरू किया। घर में रहते हुए उन्होंने रामकृष्ण—विवेकानन्द साहित्य को पढ़ा था। श्रीहट्ट में मामा के घर रहते हुए यतीन्द्र का परिचय श्रीहट्ट रामकृष्ण मिशन के साधुओं के साथ हुआ था। स्वामीजी की पुस्तकों ने ही उनको सर्वप्रथम प्रेरणा दी थी। उसी से उनको वैराग्य प्राप्त हुआ था। रंगून में अपने आवास-गृह की छत पर बैठकर वे नक्षत्र-मंडित आकाश की ओर देखा करते थे तथा उन्हें लगता मानो अनजाने देश से कोई उन्हें पुकार रहा हो। चारों ओर रात की निर्जनता एवं निस्तब्धता छायी रहती थीं। दूसरे ही क्षण उनकी दृष्टि सैनिकों की छावनियों पर पड़ती। तथा उनकी आँखों के सामने सैनिकों का अनैतिक, अगंभीर एवं अमानुषिक जीवन दृश्यमान हो उठता था। साथ ही, उन्हें याद आती उनकी निष्ठमनरायणता, श्रृंखलाबद्धता एवं कर्तव्य-बोध। यतीन्द्र के मन में भारी द्वन्द्व उपस्थित होता -- सैनिकों का जीवन या स्वामीजी का आह्वान ! वे आदर्शवादी थे। अनादर्श के साथ उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। अंततोगत्वा स्वामीजी के आदर्श की विजय हुई। उन्होंने संसार-त्याग करने का संकल्प कर लिया, परन्तु सदा के लिए सैनिकों की कठोरता, नियमानुवर्तिता और श्रृंखलापरायणता को उन्होंने ग्रहण कर लिया, क्योंकि वे होंगे स्वामीजी के सैनिक एवं भविष्य में उनकी सेना के सेनापति।

रामकृष्ण संघ में योगदान करने की इच्छा से यतीन्द्र काशी से बेलुड़ मठ आये। कलकत्ता में पढ़ते समय उनको कभी भी उद्बोधन जाकर श्री माँ के दर्शन करने की अथवा बेलुड़ मठ आकर श्री रामकृष्ण के लीलापर्षदों का संग करने की इच्छा नहीं हुई थी। वे जब काशी से बेलुड़ मठ आये उस समय संघाध्यक्ष थे श्री रामकृष्ण के अंतरंग शिष्य स्वामी शिवानन्द जी (महापुरुष महाराज)। काशी वाली घटना की पुनरावृत्ति यहाँ पर भी हुई। मठ में कोई उन्हें पहचानते न थे। स्वामी शुद्धानन्द जी (स्वामीजी के शिष्य एवं मठ-मिशन के तात्कालीन सह सचिव) ने उन्हें निराशा की वाणी सुनायी। यतीन्द्र हताश हो गये। मन में जगी आशा, का प्रदीप मानो बुझने लगा। परन्तु वे थे श्रीभगवान के इंगित किये हुए। उनकी सारी बाधाएँ दूर हो गयीं। ठीक उसी समय रामकृष्ण मिशन, देवघर के अध्यक्ष स्वामी सद्भावानन्दजी एवं प्रधान निरीक्षक स्वामी निर्वेदानन्द जी वहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने यतीन्द्र को देवघर विद्यापीठ आने का प्रस्ताव दिया। वे राजी हो गये। देवघर जाने से पहले महापुरुष महाराज के दर्शन एवं उनके आशीर्वाद की याचना करने के लिए यतीन्द्र बेलुड़ मठ आये। महापुरुष महाराज ने उनसे कहा : "तुम मठ में रहो। पहले अपने चरित्र का गठन करो, फिर काम-काज करना।" यतीन्द्र को महापुरुष महाराज की बात समझ में आ गयी। साधु जीवन की प्रथम आवश्यकता है, चरित्र-गठन करने की। इसे याद रखकर

यतीन्द्र ने देवघर विद्यापीठ में ब्रह्मचारी के रूप में योगदान किया। वह था १९२३ ई० का मई महीना। तब उनकी उम्र केवल २४ वर्ष की थी। उस समय निर्वेदानन्दजी ने उनको कहा था : "आगे चलकर तुमको संघ के बहुत कार्य करने होंगे।" परवर्ती काल में यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। यतीन्द्र देवघर विद्यापीठ में करीब ग्यारह वर्षों तक थे (१९२३ से १९२९ तक तथा १९३१ से १९३५ तक) पहले साधारण कार्यकर्ता फिर प्रधान शिक्षक एवं अंत में अध्यक्ष के रूप में।

देवघर में ही रहते हुए यतीन्द्र की ब्रह्मचर्य-दीक्षा, मंत्र-दीक्षा एवं संन्यास दीक्षा सभी महापुरुष महाराज से हुई थी। पहले से ही उन्होंने महापुरुष महाराज को अपने गुरु के रूप में मन ही मन वरण कर लिया था। एक बार किसी ने उन्हें रामकृष्णदेव के एक अन्य शिष्य से दीक्षा लेने की सलाह दी थी। लेकिन वे इसके लिए तैयार नहीं हुए थे।

सन् १९२३ के दिसम्बर महीने में श्री माँ सारदा देवी की जन्मतिथि थी। इसी पवित्र तिथि को सुबह साढ़े नौ बजे यतीन्द्र के ब्रह्मचर्य-व्रत का अनुष्ठान हुआ था। उनके साथ और भी कई लोगों की ब्रह्मचर्य-दीक्षा हुई थी। आचार्य थे स्वामी शुद्धानन्द जी। यतीन्द्र का ब्रह्मचर्य नाम पड़ा 'सौम्य चैतन्य'। तीन दिनों तक वेलुड़ मठ स्थित पद्मपुकुर (कमल तालाब जो अभी नहीं है) के किनारे अपने हाथों से हविष्यान्न बनाकर ग्रहण किया था। उस समय भी उनकी मंत्रदीक्षा नहीं हुई थी। चौथे दिन महापुरुष महाराज ने उन्हें तथा मति महाराज (वर्तमान में वयोवृद्ध साधु स्वामी शिवस्वरूपानन्द) को बुलाकर कहा—"आज तुमलोग कुछ खाना नहीं। आज तुमलोगों की दीक्षा होगी।" वह शुभदिन महापुरुष महाराज का जन्मदिन था। निर्धारित समय पर उनकी मंत्रदीक्षा हो गयी।

सन् १९२६ में देवघर विद्यापीठ के अध्यक्ष सद्भावानन्दजी क्षयरोग से पीड़ित हो गये। विशेष चिकित्सा के लिए उन्हें मद्रास भेज दिया गया तथा विद्यापीठ के अध्यक्ष पद की जिम्मेदारी ब्रह्मचारी सौम्य चैतन्य को दी गयी। उस समय वे प्रधानाचार्य के रूप में कार्यरत थे। उन दिनों वहाँ छात्र, शिक्षक एवं आवश्यक धन का बहुत ही अभाव था। सौम्यचैतन्य अर्थ-संग्रह के विरोधी थे। अयाचित दान के द्वारा ही वे विद्यापीठ का कार्य चलाते। फिर भी, उनके ही अध्यक्ष-काल में विद्यालय भवन एवं छात्रावास भवन (ब्रह्मानन्द धाम) का निर्माण हुआ था। जब वे प्रधानाचार्य थे, तब लड़कों को जगाने के लिए घंटी बजाना, वे हाथ-मुँह धोने के बाद स्वच्छ कपड़े पहनकर प्रार्थना में जाते हैं या नहीं तथा ठीक से पढ़ाई-लिखाई करते हैं या नहीं आदि देखना, क्लास लेना ये सारे कार्य उन्हें ही सुबह से लेकर रात दस बजे तक करने पड़ते थे। विद्यापीठ के अध्यक्ष के रूप में भी बहुत काम रहता था। टोकरियाँ लेकर खुद ही बाजार कर आते थे। विद्यापीठ की चिट्ठियाँ साइकिल से डाकघर जाकर ले आते थे।

अध्यक्ष होने पर भी कोई विशेष सुविधा वे नहीं लेते थे। वे अन्य ब्रह्मचारियों की तरह ही अपना जीवन-यापन करते थे। दूसरों की भाँति अपनी अपनी थाली स्वयं धोते। सभी के साथ फुटबॉल, वालीबॉल एवं कैरम खेलते थे। समय को कभी भी नष्ट नहीं करते थे। पढ़ाई-लिखाई के प्रति उनका विशेष झुकाव था। वृद्धावस्था में जब उनकी आँखों की ज्योति एकदम क्षीण हो गयी थी, तब भी निर्दिष्ट समय पर किसी न किसी ग्रंथ का पाठकर उन्हें सुनाया जाता था। सेवकों से मजाक में कहते : "रामकृष्ण लोक में भी मुझे पाठ सुनाने जाना।" देवघर में साधु-ब्रह्मचारियों के प्रति उनका अगाध प्रेम था। किन्तु बाहर से वह मालूम नहीं पड़ता। जीवन के आखिरी दिन तक उन्होंने कठोर जीवन-यापन किया है। जरूरत पड़ने पर नवागत ब्रह्मचारियों से भी राय लेते थे। विशेष-विशेष दिनों में साधु-ब्रह्मचारियों के साथ वैद्यनाथ मन्दिर जाकर सारी रात जप में बिता

देते थे। उन्हीं के अध्यक्ष रहते हुए श्री रामकृष्ण की शिष्या गौरी माँ का विद्यापीठ में शुभ पदार्पण हुआ था।

अधिकांश समय देवघर में ही रहने के कारण सौम्य चैतन्य अपने गुरुदेव (महापुरुष महाराज) का पुण्य संग-लाभ अधिक नहीं कर सके। किन्तु जब कभी मौका मिलता वे गुरु की सेवा प्राण मन से करते थे गर्मी की छुट्टी, दुर्गापूजा की छुट्टी एवं बड़ा दिन की छुट्टी वे मठ में बिताते थे। उस समय महापुरुष महाराज का सान्निध्य लाभ वे करते थे। मठवास का स्मृतिचित्र उन्हीं के शब्दों में; "बेलुड़ मठ में रहने से हमें बहुत ही लाभ मिलता था। रोज सुबह के समय हम महापुरुष महाराज के दर्शन एवं सान्निध्य-लाभ करते थे। उनके पास से हमें आदर्श एवं प्रेरणाएँ प्राप्त होती थीं। उस समय पीने का पानी उपलब्ध नहीं था। गंगा के उस पार स्थित वराहनगर से नौका द्वारा पीने का पानी लाया जाता था। रसोई एवं अन्य कार्यों के लिए एकादशी के दिन हम ब्रह्मचारियों को बाल्टियों द्वारा जल भरना पड़ता था। गन्दगी बैठ जाने के बाद फिटकिरी डालकर उस जल को निर्मल किया जाता था। उसी जल का रसोई एवं अन्य कार्यों के लिए उपयोग किया जाता था। हम चार-पाँच व्यक्ति पंक्तिबद्ध होकर खड़े हो जाते थे एवं गंगाजल जलपात्रों में भर लेते थे। दूसरे साधु लोग भी उसी जल का उपयोग करते थे। प्रेमानन्द मेमोरियल हॉल में हम आठ-दस लोग एक साथ सोते थे। उस समय विद्युत की व्यवस्था नहीं थी। एकमात्र साधन था किरासन तेल का लालटेन। एक बार तेल भरने के बाद उसे सात सप्ताह तक चलाना होता था। खाना-पीना भी कोई अच्छा नहीं मिलता था। बहुत ही साधारण दाल-भात एवं तरकारी।" ब्रह्मचारी अवस्था में वे एक समय स्वामीजी के मन्दिर के पुजारी भी रह चुके थे।

सन् १९२८ में स्वामी जी की जन्मतिथि के शुभ अवसर पर महापुरुष महाराज ने सौम्य चैतन्य को संन्यास दीक्षा देकर नवजन्म प्रदान किया। नया नाम मिला-'गंभीरानन्द'। इतने दिनों के बाद जीवन मानो सार्थक हुआ, स्वप्न मानो साकार हुआ। सही में, वे बाहर से गंभीर थे। सदा सर्वदा गंभीर रहते मानो गंभीर आत्मा। पर भीतर से मानो रस से पूर्ण थे। जो लोग उनके घनिष्ठ थे, सिर्फ वे लोग ही इस रहस्य को जान पाये थे। उनके साथ जिन लोगों की संन्यास दीक्षा हुई थी उनमें स्वामी शिवस्वरूपानन्द (मति महाराज) एवं स्वामी काशीश्वरानन्द (लाई महाराज) अभी भी स्थूल देह में हैं।

स्वामी गंभीरानन्द जी प्रायः डेढ़ साल उद्बोधन कार्यालय (कलकत्ता) एवं काशी अद्वैत आश्रम में कार्यरत थे। उद्बोधन में कुछ दिनों तक रहने के बाद उनका स्थानान्तरण काशी अद्वैत आश्रम हो गया। वहाँ वे सदा तपस्या के भाव में ही रहते थे। ध्यान-जप-पाठादि में मग्न रहा करते थे। वहाँ के अध्यक्ष थे स्वामी निर्भरानन्द जी (चन्द्र महाराज)। गंभीरानन्द का काम बाजार करना था। चन्द्र महाराज रोज छः आने देते थे। ठाकुर की सेवा पूजा के लिए दो आने का खर्च करना पड़ता था तथा बचे हुए चार आने में साधु सेवा के लिए सब्जी आदि खरीदनी पड़ती थी। वे कभी-कभी दो-एक पैसे वापस भी कर देते थे। ठाकुर सेवा में कोई त्रुटि न हो इसके लिए वे हमेशा अच्छी चीजें ही खरीदते थे। ठाकुर-सेवा एवं साधु-सेवा के प्रति उनका लगाव एवं प्रेम अपूर्व था। काशी में रहते हुए वे पण्डित के पास शास्त्रादि अध्ययन करते थे।

गंभीरानन्द जी कुल मिलाकर करीब दस साल (१९३६ से १९४१ तक एवं १९४ से १९४७ तक) मठ-मिशन की कार्यकारिणी समिति के सदस्य थे। उन दिनों वे मठ में ही थे। उस समय कार्यकारिणी समिति के सदस्य त्रि-वर्षीय साधु सम्मेलन में निर्वाचित होते थे। पहली बार वे मठ के प्रधान कार्यालय के 'Office master' थे। उस समय हिरण्मयानन्दजी खजांची थे। अपना संस्मरण सुनाते हुए उन्होंने कहा था; "गंभीरानन्द जी हमलोगों के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करते थे। किन्तु अधिक मिलन-सार नहीं थे। वे स्पष्टवादी थे।

दर्शककक्ष में साधु-ब्रह्मचारियों की वाद-विवाद सभा में वे सक्रिय रूप से भाग लेते थे। जब किसी साधु का स्थानान्तरण शाखा केन्द्रों में होता तो वे उसे 'विदाई संभाषण' लिख दिया करते थे। १९४५ ई० में जब द्वितीय बार मठ में रह रहे थे, तब उनको शाखाकेन्द्रों के निरीक्षक' के रूप में नियुक्त किया गया था। उनका काम था विभिन्न शाखा केन्द्रों में घूम-घूम कर निरीक्षण करना एवं मिशन के संचालकों को प्रतिवेदन (रिपोर्ट) देना।

गिरिराज हिमालय के बीच में स्थित है मायावती का अद्वैत आश्रम। यहाँ से संघ की अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'प्रबुद्ध भारत' प्रकाशित होती है। सम्पादकीय कार्यालय भी वहीं है। गंभीरानन्द जी यहीं तीन वर्षों तक (१९५२-५४) 'प्रबुद्ध भारत' के सम्पादक थे। उस समय वहाँ के अध्यक्ष थे स्वामी पवित्रानन्द जी। विभिन्न विषयों पर अलग-अलग दृष्टिकोण से लिखे गये उनके सम्पादकीय सम्बोधनों की सबों ने सराहना की थी। उन्हीं के सम्पादन-काल में विख्यात चित्रकार आचार्य नन्दलाल बसु के दो विख्यात चित्र 'शिव का विषपान' एवं 'नटराज' प्रबुद्ध भारत में प्रकाशित हुए थे। प्रबुद्ध भारत के सम्पादक होने के बहुत साल बाद दस साल (१९५३-६३) वे मायावती के अध्यक्ष भी रहे थे। उनके अध्यक्ष काल में मायावती आश्रम की उन्नति विभिन्न क्षेत्रों में हुई। उत्तर प्रदेश के तात्कालीन मुख्यमंत्री श्री सी० बी गुप्ता मायावती आश्रम देखने गये थे। श्री गुप्ता की सहायता से उन्होंने लोहाघाट से आश्रम तक साढ़े सात किलोमीटर लम्बी पक्की सड़क का निर्माण करवाया था। उस रोड का नाम दिया था 'मायावती रोड'।

मायावती में वे सभी कार्यकर्त्ताओं को उत्साह देते थे। उनके साथ हंसी-मजाक भी होता। दो पहर में खाने के बाद सभी लूडो खेलते। गंभीरानन्द जी छिपकर लुडो के पासे उलट-पुलट कर के चले जाते। उनकी बच्चों की सी हरकत देखकर सभी हँसने लगते। 'आनन्द बाजार' दैनिक संवाद पत्र का 'अरण्यदेव' फीचर उन्हें बहुत प्रिय था।

मायावती में वे अपना काम खुद करते थे। किसी ने उनको दोपहर में विश्राम करते नहीं देखा। उस समय लिखा करते थे। खाने के आसन पर आने में वे एक मिनट की भी देरी नहीं करते थे। उनकी समयानुवर्तिता अतुलनीय थी—घड़ी मिलायी जा सकती थी। महासमाधि के पूर्व तक इस समयानुवर्तिता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। दोपहर को साधु-ब्रह्मचारियों के लिए क्लास लेते थे। बरामदे मे टहलते हुए वे एक बगला गीत गुनगुनाया करते—'जाल फेले जेले रयेछे बसे' अर्थात् जाल फैलाकर मछुआरा बैठा हुआ है। वे प्रायः ही कहा करते; "हमें अपनी परम्परा को नष्ट नहीं होने देना है। चाहे जो भी हो, उसकी रक्षा करनी है।"

सन् १९४७ में गंभीरानन्द जी रामकृष्ण मठ के न्यासी एवं रामकृष्ण मिशन के प्रशासकीय समिति के सदस्य नियुक्त किये गये। इसी साल अप्रैल में मठ-मिशन के सहसचिव के रूप में उन्होंने प्रधान कार्यालय में योगदान किया। सन् १९४९ में Advisory Finance committee (परामर्शी वित्त समिति) के सदस्य नियुक्त हुए। १९५३ ई० तक वे सहसचिव थे। पुनः १९६३ ई० में वे सह सचिव के रूप में प्रधान कार्यालय में आये।

सन् १९६६ में स्वामी वीरेश्वरानन्द जी के संघाध्यक्ष होने पर महासचिव के रूप में उनका निर्वाचन हुआ। प्रायः तेरह वर्षों तक बड़ी दक्षता के साथ उन्होंने यह जिम्मेदारी निभायी। वे अपूर्व प्रशासनिक दक्षता एवं प्रगाढ़ साधुता की समन्वय मूर्ति थे। महासचिव के रूप में बहुत सी विशेषताएँ देखी गयी थीं। वे किसी भी विषय में यथोचित निर्णय शीघ्र ले सकते थे। किसी कार्य को अधूरा नहीं रखते थे। यथासंभव अपना निर्णय निरपेक्ष रखते थे। उनका प्रत्येक कार्य सुन्दर एवं व्यवस्थित था। समय-पालन करना नहीं भूलते।

जरूरत पड़ने पर सहकर्मियों की राय अवश्य लेते थे। जब कभी कोई कठिन समस्या उपस्थित होती, उनका समाधान वे अति कौशल पूर्वक करते थे। प्रयोजन होने पर साधु-कार्यकर्ताओं को डाँट-फटकार भी सुनाते।

दैनिक कार्यों को ईश्वर की आराधना के रूप में उन्होंने ग्रहण किया था। शंकराचार्य रचित 'शिव मानस पूजा स्तोत्रम्' का निम्नलिखित अंश उन्हें बहुत प्रिय था। प्रायः ही उनके मुँह से यह सुनाई दिया करता—

"आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम्
पूजा ते विषयोपभोग रचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सचारः पदयोः प्रदक्षिण विधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो,
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम्॥"

वे एक अच्छे दार्शनिक, मेधा सम्पन्न एवं चिन्तनशील संन्यासी थे। शास्त्रों में उनका अगाध पांडित्य था। स्वामी जगदानन्द जी के पास उन्होंने वेदान्त का अध्ययन किया था। काशी में तथा अन्य केन्द्रों में रहते हुए उन्होंने संस्कृत व्याकरण एवं अन्य शास्त्रों का भी अध्ययन किया था। इतना ही नहीं, स्वयं भी निष्ठापूर्वक शास्त्रादि का पठन पाठन करते थे। वे कहा करते, "साधुओं को शास्त्र खुद ही पढ़कर उसके ऊपर ध्यान करना चाहिए। तभी वे शास्त्र का मर्मार्थ ठीक से समझ सकेंगे।"

साहित्य के प्रांगण में उन्होंने प्रवेश किया था स्कॉटिश चर्च कॉलेज के लेख लिखकर। साधु होने के पश्चात् उनका सर्वप्रथम लेख प्रकाशित हुआ था देवघर विद्यापीठ की एक हस्तलिखित पत्रिका में। लेख का विषय था— 'स्वामी विवेकानन्द'। उस लेख को पढ़कर महापुरुष महाराज बहुत खुश हुए थे। महापुरुष महाराज की खुशी स्वामी गंभीरानन्द जी के लिए आशीर्वाद स्वरूप थी। संघ की बंगला मासिक पत्रिका 'उद्बोधन' एवं अंग्रेजी मासिक पत्रिकाएँ 'प्रबुद्ध भारत' तथा 'वेदान्त केसरी' में उनके कई चिन्तनशील लेख प्रकाशित हुए हैं। श्री रामकृष्ण, श्री माँ एवं स्वामी जी विषयक स्मारिकाओं में भी उनके कई सुचिन्तित लेख छपे हैं।

गंभीरानन्द जी की लिखित प्रथम पुस्तक है स्तव कुसुमांजलि। यह विभिन्न स्तोत्रों का सुन्दर संकलन है। इसके संबंध में मजाक करके कहते, "अब मेरी भी पुस्तक बाजार में बिकेगी।"

'इन्स्टिट्यूट ऑफ कल्चर' से प्रकाशित 'कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया' के तृतीय खंड एवं 'दी कम्पलीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द' के आठ खण्डों का सम्पादन उन्होंने ही किया है। प्रत्येक खंड के अंत में दी हुई अनुक्रमणिका भी उन्होंने ही तैयार की है।

उनके द्वारा लिखित एवं अनुवादित पुस्तकों के नाम प्रथम प्रकाशन वर्ष सहित नीचे दिये गये हैं —

(१) स्तवकुसुमांजलि (१९३९)
(२) उपनिषद् ग्रंथावलि – तीन खण्डों में (१९४१) १९४३, १९४८
(३) श्री रामकृष्ण भक्त मालिका दो खण्डों में (१९५२)
(४) श्री माँ सारदा देवी (१९५३)
(५) सिद्धांत लेश संग्रह (१९५८)
(६) युगनायक विवेकानन्द, तीन खण्डों में (१९६६)
(७) कः पन्थाः (१९७९)
(८) Holy Mother Sri Sarada Devi (1955)
(९) History of Ramakrishna Math & Ramakrishna Mission (1957)
(१०) Eight Upniahads, with Shankar's Commentary vol I (1957) vol II (1958)
(११) Brahma Sutra Bhasya of Sri Shankar (1965)
(१२) The Apostles of Sri Ramakrishna (1966)
(१३) Chandogya Uprishad with Shankara's Commentary (1983)
(१२) The Bhagawadgita with Shankara's Commentary (1984)

उपर्युक्त चौदह पुस्तकों में प्रथम सात पुस्तकें बंगला भाषा में हैं जिनमें से श्री रामकृष्ण भक्त मालिका तथा श्री माँ सारदा देवी का हिन्दी अनुवाद हो चुका है।

सबसे उल्लेखनीय ग्रन्थ है श्री माँ की जीवनी। श्री माँ की जन्म शताब्दी के पूर्व कोई प्रामाणिक जीवन-चरित्र नहीं था। बहुत सी घटनाएँ अप्रकाशित थीं। उन्होंने कठोर परिश्रम करके तथ्यों का संग्रह किया तथा मठ के संचालकों के विशेष अनुरोध पर १९५३ में श्री माँ सारदा देवी नामक ग्रन्थ की रचना की। एक विद्वान संन्यासी ने उनको कहा था; "इतनी व्यस्तताओं के बीच भी आपकी तरह इतने सारे ग्रन्थों की रचना और किसी ने नहीं की है। आपके द्वारा लिखित श्री माँ की जीवनी सबसे अधिक मूल्यवान, विस्तृत, सुपाठ्य एवं प्रामाणिक है। श्री माँ की जन्मशताब्दी के अवसर पर सही में आपने श्री माँ का प्रचार किया है।" इसके उत्तर में उन्होंने कहा था "यह कार्य समाप्त कर मुझे बहुत ही आनन्द मिला है, तृप्ति मिली है।" कई पाठकों ने उन्हें यह प्रश्न किया है "क्या आपने श्री माँ को देखा है? श्री माँ के दर्शन किये बिना उस पुस्तक की रचना असंभव है।" उत्तर में उन्होंने कहा था। "मैंने इस चर्मचक्षु के द्वारा माँ के दर्शन नहीं किये हैं, लेकिन ध्यान करने से माँ की छवि मानो सामने आ जाती है। वे मेरे साथ सर्वदा हैं।"

उनकी दूसरी अति महत्वपूर्ण पुस्तक है स्वामीजी का जीवन चरित्र (युगनायक विवेकानन्द)। स्वामीजी की वृहत् एवं प्रामाणिक जीवनी का अभाव बहुत दिनों से था। विभिन्न तथ्य अलग-अलग पुस्तकों में विक्षिप्त रूप से थे। नयी-नयी घटनाएँ विभिन्न पत्र पत्रिकाओं एवं पुस्तकों में प्रकाशित हो रही थीं। कई घटनाएँ वृद्ध संन्यासियों को ज्ञात थीं तथा और भी कई घटनाएँ अज्ञात थीं। इन सारी घटनाओं को एकत्रित करके प्रमाणिक जीवनी लिखना उनके जैसे मेधावी संन्यासी के लिए ही संभव था। उस समय वे संघ के सहसचिव तथा बाद में महासचिव जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्यरत भी थे। प्रशासनिक कार्यों के बीच जो थोड़ा बहुत अवकाश मिलता था उसी में उन्होंने 'युगनायक विवेकानन्द' (तीन खण्डों में) रचना की।

देह त्याग के पूर्व वे ब्रह्मसूत्र भाष्य एवं उपनिषद् भाष्य के अंग्रेजी अनुवाद का संशोधन भी कर गये हैं। उनका अंतिम कार्य था मधुसूदन सरस्वती कृत गीता की टीका का अंग्रेजी में अनुवाद करना। अनुवाद संपूर्ण हो गया है, किन्तु संशोधन कार्य केवल दो अध्यायों तक ही हो सका।

शास्त्रों का ज्ञान उन्हें बहुत था। विशेषकर शंकराचार्य ग्रन्थावलि में उनका अपूर्व अधिकार था। इसका प्रकाश हमें उनकी बातचीत, लेखों एवं प्रवचनों में दिखाई देता है। एक घटना उल्लेखनीय है। सन् १९५८ में वे मैसूर आश्रम गये थे। वहाँ पर 'नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा प्रतिष्ठान का उद्घाटन होना था। आचार्य रामानुज-दर्शन के पंडित स्वामी आदिदेवानन्द जी (रामकृष्ण मठ, बंगलोर के अध्यक्ष) भी वहाँ गये थे। एक दिन संध्या के समय स्वामी गंभीरानन्द जी टहल रहे थे। स्वामी आदिदेवानन्द जी भी वहाँ पर उपस्थित हुए। स्वामी गंभीरानन्द जी ने अचानक उनसे पूछा "अच्छा, आचार्य शंकर के इष्ट कौन थे?" स्वामी आदिदेवानन्द जी विभिन्न शास्त्रों, भाष्यों एवं स्तोत्रों से उद्धृति देकर यह प्रमाणित करने की चेष्टा करने लगे कि आचार्य शंकर के इष्ट भगवान विष्णु थे। गंभीरानन्द जी भी छोड़ने वाले नहीं थे। वे भी विभिन्न शास्त्रों एवं स्तोत्रों से उद्धृति देकर उन्हें गलत प्रमाणित करने लगे। एक घंटे तक दोनों पंडित संन्यासियों के बीच वाद-प्रतिवाद चलता रहा। पूरे दृश्य के साक्षी थे एक युवा संन्यासी। वे उन दोनों पंडितों के शास्त्राधिकार एवं विद्वत्ता को देखकर चकित हो गये। उन्होंने बाद में पूछा था; "महाराज, आखिर में आप लोग किस निर्णय पर आये?" उत्तर मिला: "कोई निर्णय नहीं हुआ।"

गंभीरानन्द जी की चिन्ताधारा प्रवाहित होती थी दर्शन के क्षेत्र में। विशेषकर स्वामी जी के सेवा-योग को उन्होंने अपने लेखों एवं प्रवचनों के माध्यम से एक दार्शनिक भित्ति पर प्रतिष्ठित किया है। यह उनकी दार्शनिक चिन्ताधारा का एक नया अवदान है, एक नया संयोजन है। एक दिन एक संन्यासी के साथ वे विविध प्रसंगों के माध्यम से 'सेवायोग' के संबंध में चर्चा कर रहे थे। संन्यासी ने कहा : "१९६८ में बंगलोर में 'सेवा के आदर्श' के संबन्ध में आपका एक लम्बा प्रवचन हुआ था। देखता हूँ उस समय से आप धीरे-धीरे सेवायोग के तत्व को अधिक महत्व दे रहे हैं। मठ-मिशन की चिन्ताधारा के क्षेत्र में आपका यह अवदान मूल्यवान है।" प्रसन्न होकर गंभीरानन्द जी कहने लगे : देखो, लीलाप्रसंग के संकेतानुसार ही मैं अग्रसर हुआ हूँ। स्वामी जी के सेवा के आदर्श को सार्थक रूप में अगर रूपायित करना हो तो ज्ञान, कर्म, भक्ति एवं योग चारों का समन्वय करके ही अग्रसर होना पड़ेगा। स्वामी जी ने भी हमलोगों को बताया है, "ठाकुर के उपदेशों की नींव पर ही नयी साधन-प्रणाली को हम गढ़ पायेंगे।" सेवा योग को इस प्रकार हम ग्रहण कर सकते हैं :

सोनार गाँव (बंगला देश) से गंभीरानन्द जी ने भाषण देना प्रारम्भ किया था। वक्तृता देने में वे भय तथा संकोच बोध करते, किन्तु जब बोलते तब सुन्दर रूप से स्पष्ट करके तत्त्व की प्रतिष्ठा कर देते। परवर्ती काल में वे अंग्रेजी एवं बंगला भाषा के एक सुचिन्तित वक्ता थे। उनके भाषण बहुत ही हृदयग्राही होते थे। गुणी लोग प्रसंशा किया करते थे।

साधुओं एवं जन साधारण की चिकित्सा की सुन्दर व्यवस्था हो इसके लिए वे विशेष आग्रही थे। उनके ही अथक प्रयास से बेलुड़ मठ में आरोग्य भवन की स्थापना हुई जहाँ वृद्ध एवं बीमार साधुओं के रहने एवं चिकित्सादि की सुन्दर व्यवस्था की गयी है। बेलुड़ मठ में जन साधारण के लिए एक दातव्य चिकित्सालय है। इस चिकित्सालय में अधिक से अधिक चिकित्सा व्यवस्था करने के लिए वे विशेष प्रयत्नशील थे तथा उन्हीं की चेष्टा से पैथोलॉजी, एक्सरे, आँख विभाग एवं दाँत विभाग आदि खुले।

जो लोग आजीवन रामकृष्ण संघ के लिए कार्य करते हैं, ऐसे लोगों के लिए एक वृद्धाश्रम बनाने की ओर उनकी विशेष दृष्टि थी। इसके लिए अपील निकालकर उन्होंने धनसंग्रह भी किया। वरिषा (कलकत्ता) में एक दानशील व्यक्ति ने अपना एक उद्यान इस महत् कार्य के लिए दान में दिया तथा उसी जमीन में वृद्धाश्रम की स्थापना हुई तथा बहुत खुशी की बात है कि गंभीर महाराज ने ही (अपने अध्यक्ष काल में) उस वृद्धाश्रम का उद्घाटन किया।

बेलुड़ मठ में नवागत ब्रह्मचारियों के ठहरने की व्यवस्था पहले नहीं थी। जो संघ में योगदान करना चाहते थे उन्हें शाखाकेन्द्रों में भेज दिया जाता था। उनके एक सहयोगी ने जब इस ओर उनका ध्यान आकर्षित किया तो उन्होंने यहाँ नवागत ब्रह्मचारियों के ठहरने की समुचित व्यवस्था कर दी। उसी दिन से बेलुड़ मठ में शुरू हुआ नवागत ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र (P.P.T.C.)। यह १९७५ की घटना है।

प्रशासनिक कार्यों के सिलसिले में गंभीरानन्द जी देश के बाहर वर्मा, मलेशिया, सिंगपुर, श्रीलंका एवं बंगला देश गये थे। साथ ही उन्होंने अमेरिका एवं इंगलैंड के रामकृष्ण संघ के विभिन्न केन्द्रों को भी एक-बार (१९७२ में) देखा था।

शास्त्रादि अध्ययन एवं प्रशासनिक कार्यों के बीच उनको तीर्थ दर्शन का सुयोग बहुत ही कम मिलता था। जब वे महासचिव थे तब कई संन्यासियों के अनुरोध पर तीर्थ गमन के लिए सहमत हुए थे। इस तरह उन्होंने केदार नाथ-बदरीनाथ (अक्टूबर १९७३), पशुपतिनाथ (मार्च १९७६), अमरनाथ (जुलाई १९७६), कन्याकुमारी (मार्च १९७७) एवं गंगोत्री (अक्तूबर १९७७) जैसे विभिन्न तीर्थों के दर्शन किये थे। अमरनाथ में उन्हें एक

विशेष दर्शन हुए थे। उस दर्शन की बात अपने एक सहयोगी को जनाते हुए उन्होंने कहा था : 'देखो, देखो, मैंने क्या देखा जानते हो! मैंने देखा ठाकुर (श्री रामकृष्ण) वहाँ (अमरनाथ शिवलिंग के स्थान पर) बैठे हुए हैं।" पूछे जाने पर इस घटना का उल्लेख उन्होंने कई लोगों से किया है, जैसा साधारणतः वे नहीं करते थे।

निरभिमानिता गंभीरानन्द जी के जीवन का एक सबसे बड़ा गुण था। उनके द्वारा रचित पुस्तकों के लिए जब कोई धन्यवाद देता या उनके भाषणों-लेखों की कोई सराहना करता तो वे निर्विकार एवं मौन रह जाते थे। अभिनन्दन-पत्र आदि का कोई उत्तर ही नहीं देते। जब वे संघ के अध्यक्ष हुए तब भी वे वैसे ही निर्विकार थे। प्रायः ही वे कहा करते : "मैं अभी तक समझ नहीं पाया हूँ कि क्या मैं ही प्रेसीडेन्ट हूँ।" दीक्षा प्रदान करने के काम को भी वे 'दायित्व पालन' के सिवा और कुछ नहीं समझते थे। और एक बात वे कहा करते : "यह विशाल दुनिया, उसमें एशिया महादेश, उसमें भारतवर्ष, उसमें यह राज्य पश्चिम बंगाल, हावड़ा जिला बेलुड़ मठ। मानचित्र में मानो एक छोटा सा विन्दु। उसी विन्दु में यह गंभीरानन्द!" अर्थात् वे अपने आप को क्षुद्रातिक्षुद्र समझते थे।

गंभीरानन्द जी संघ की परम्परा के धारक एवं वाहक थे। उनकी तीक्ष्ण दृष्टि इस ओर रहती कि किसी प्रकार संघ की परम्परा नष्ट न होने पावे। जब वे महासचिव थे, उस समय मठ-मिशन के सहाध्यक्ष स्वामी ओंकारानन्द जी महाराज मठ में पधारे थे। मुख्य कार्यालय के बाहर वाले बरामदे में एक बेंच के ऊपर वे बैठे हुए थे। पास ही में गंभीरानन्द जी खड़े थे। एक तरुण संन्यासी उधर से गुजरा। ओंकारानन्द जी ने उनको पास बुलाया तथा प्रेम से अपनी बगल में बिठाया। यह देखकर गंभीरानन्द जी ने आवेग भरे स्वर में उस संन्यासी से कहा : "अरे, तुम क्या कर रहे हो? स्वामी ओंकारानन्द जी महाराज हमारे संघ के सहाध्यक्ष हैं। उनके साथ एक ही आसन पर बैठना सर्वथा अनुचित एवं हमारी परम्परा के विरुद्ध है।" वह संन्यासी लज्जा से नतमस्तक होकर शीघ्र उठ खड़ा हुआ। बात है बहुत छोटी, लेकिन गंभीरानन्द जी की परम्परा के प्रति प्रेम एवं बड़ों के प्रति सम्मान का सूचक है।

सन् १९७९ में उन्हें रामकृष्ण मठ एवं मिशन के सहाध्यक्ष पद पर आसीन किया गया। तब से लेकर महाध्यक्ष बनने के पूर्व तक वे सहाध्यक्ष थे। उस समय वे ज्यादातर राँची के मोराबादी आश्रम में रहते थे। बीच-बीच में बेलुड़ मठ आया करते थे।

सहाध्यक्ष होने के बाद उन्होंने मंत्रदीक्षा देनी प्रारंभ की। वे अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा कर लोगों का कल्याण साधन करते थे। रामकृष्ण मठ-मिशन के विभिन्न केन्द्रों एवं प्राइवेट आश्रमों में जा-जाकर भक्तों पर कृपा करते थे। राँची आश्रम में कई भक्त उनके सत्संग के लिए आया करते थे। समय व्यर्थ की बात-चीत में नष्ट न हो, इसके लिए वे किसी न किसी सद्ग्रन्थ का पाठ कराते थे।

एकबार राँची से वे बेलुड़ मठ आये हुए हैं। उनकी चौदह-पन्द्रह साल की एक शिष्या प्रायः ही उनके दर्शन के लिए आया करती। लड़की की माँ दूसरों के यहाँ काम करके अपना निर्वाह चलाती है तथा लड़की किसी दूसरे स्वजन के घर रहती है। उसका मन बहिर्मुखी था। वह अपने अभिभावक के साथ मठ में आयी है। उसने गुरुदेव से कहा कि वह गंगा में डूबकर आत्म हत्या कर लेगी। यह सुनकर गुरुदेव चौंक पड़े तथा जोर से बोल उठे : "क्या कहा? गंगा में डूबकर आत्म हत्या करोगी? ऐसा करके तुम जरूर प्रेतनी बनोगी। तुम अपने अभिभावक की बात सुना करो, उसी से तेरा कल्याण होगा।" इस तरह गुरु के कड़े होकर धमकाने से वह अपनी भूल समझ गयी। गुरु की बात का पालन कर उस लड़की का जीवन बच गया। एक भक्त दम्पति के बीच मनोमालिन्य था। बात इतनी दूर तक पहुँच गयी की स्त्री आत्महत्या करने पर उतारू हो गयी।

अचानक एक दिन उसने अपने मन की बात गुरुदेव के समक्ष कह डाली। सुनकर वे एकदम गंभीर स्वर में बोले : "अपने आप कोई निर्णय नहीं लेना। श, ष, स— मतलब सहो, सहो, सहो। सहन करो।" गुरु की अपार करुणा से वह भी मृत्यु के मुख से बच गयी। अभी उसने संसार में मिल-जुलकर रहना सीख लिया है। न जाने और कितने लोगों को उन्होंने सही रास्ते पर लाया है।

सन् १९८० के नवम्बर महीने में वे चंडीगढ़ आश्रम गये थे। वहाँ पर उन्होंने Sadhana according to Sri Ramakrishna' (श्री रामकृष्ण के अनुसार साधना) नामक विषय पर एक प्रवचन दिया था। प्रवचन के बाद एक सेवक ने उनसे पूछा : "आपकी साधना क्या थी ?" उत्तर में उन्होंने कहा था : अनासक्ति, जैसे गीता में कहा है —

ज्ञेयः सः नित्य संन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात् प्रमुच्यते॥

सेवक के एक और प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था : "मैं रोज नौ से दस हजार जप किया करता था। परन्तु उसके साथ ही अनासक्त रहने का अभ्यास करता था। श्री रामकृष्ण एवं श्री माँ इस श्लोक के मूर्त प्रतीक थे। आजकल मैं देख रहा हूँ कि स्वर्गीय आभा के साथ श्री रामकृष्ण मेरे हृदय में बैठे हुए हैं। तथा नहीं चाहने पर भी कभी-कभी मेरे अन्तर में श्री माँ का आविर्भाव होता है।

गंभीरानन्द जी के जीवन में विलासिता का नाम मात्र भी नहीं था। प्रयोजन से अधिक वे कुछ नहीं रखते थे। एक बार मठ के लेगेट हाउस में वे ठहरे हुए थे। किसी ने उन्हें एक धोती दी। उन्हें धोती की आवश्यकता नहीं थी। पास में ही एक ब्रह्मचारी रहता था। उसको वह धोती देकर उन्होंने मानो छुटकारा पाया। वे अपने पास केवल एक जोड़े जूते रखते थे। एक बार किसी परिचित भक्त ने उन्हें एक जोड़ी चप्पल देनी चाही। वे उसे लेना नहीं चाहते थे। बहुत ही जिद करने पर उन्होंने चप्पल तो ले ली किन्तु, कभी भी उसे पहना नहीं। किसी दूसरे शिष्य ने एकबार जिद पकड़ी कि उसका लाया हुआ खाना उन्हें खाना ही पड़ेगा। वे एकदम राजी नहीं हो रहे थे। बहुत अनुनय-विनय करने पर उन्होंने कहा, 'अच्छा एक आम देना।' एक शिष्य दम्पति ने उनसे अनुरोध किया था, 'महाराज, जब कभी आपको किसी चीज की जरूरत हो तो कृपा करके मुझे अवश्य कहेंगे।' इस पर महाराज बोले—'नहीं, किसी चीज की जरूरत नहीं है।' अपरिग्रह का दीप उनके हृदय में सदा प्रज्वलित रहता था : उनके सुदीर्घ ६५ वर्ष के साधु-जीवन का मूल वाक्य था– Plain living and high thinking (सादा जीवन उच्च विचार)।

एकबार एक छोटे से ऑपरेशन के बाद वे आरोग्य भवन में विश्राम ले रहे थे। मेरी लुई वर्क द्वारा लिखित 'न्यू डिस्कवरी' की पाण्डुलिपि पढ़कर उन्हें सुनायी जा रही थी। पाठ के पश्चात मौन होकर बैठे थे। अचानक गाने लगे—'समय हयेछे निकट. एखन बाँधन छिड़ितें हवे' (समय निकट आ गया है, अभी बन्धन काटना होगा)। बीच-बीच में उनका अनासक्ति भाव बहुत तीव्र हो उठता। मन ही मन गाया करते। कभी संगीत चर्चा नहीं की थी. फिर भी ठुमरी, ख्याल, धुपद आदि गीत वे बहुत ही पसंद करते थे। एकबार एक संन्यासी को हाथ से ताल देकर दिखा रहे थे एवं कंठ्य संगीत का मर्म समझा रहे थे। अतुलप्रसाद, रजनीकान्त एवं रवीन्द्रनाथ के गीत उन्हें बहुत प्रिय थे। विशेषकर 'पूजार प्रदीप जालिये राखिस हृदय देउल माझे' (पूजा का प्रदीप हृदय की देहरी पर जलाये रखो) यह गीत उन्हें बहुत ही पसंद था।

श्री रामकृष्ण संघ के प्रथम महासम्मेलन में गंभीरानन्द जी दर्शक के रूप में थे। संघ के द्वितीय सम्मेलन में वे वक्ता थे। इसके दो सत्रों में वे सभापति थे। सुचिन्तित भाषणों के द्वारा श्रोताओं को मुग्ध किया था। १९८५ ई० में संघ के प्रथम युवा महासम्मेलन उनके

ही महाध्यक्ष काल में अनुष्ठित हुआ था। वे इसके उद्घाटन कर्त्ता थे।

२२ मार्च १९८५ को वे अचानक अचेतन होकर गिर पड़े। शीघ्र ही उन्हें अस्पताल मे भर्ती किया गया। २२ मार्च को उनके हृदय मे पेस मेकर बैठाया गया। इसके कुछ ही दिनों बाद उन्हे रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के ग्यारहवें महाध्यक्ष के रूप में चुन लिया गया। उस समय उन्होंने कहा था—चार वर्षों से अधिक मैं जीवित नहीं रहूँगा। संघाध्यक्ष के रूप में उन्होंने २९ मई १९८५ को पुराने मंदिर में प्रथम दीक्षा प्रदान की।

उनकी स्मरण शक्ति अतुलनीय थी। जो कुछ भी, चाहे वह प्रशासनिक कार्य से संबधित हो या शास्त्रों के पठन-पाठन से, एकबार सुनते अथवा पढ़ते उसे भूलते नहीं थे। कई पुराने साधुओं के अनुसार उनके जैसे स्मृतिवान पुरुष बहुत ही कम देखे जाते हैं। दृष्टान्तस्वरूप एक दो घटनाओं का यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। संघाध्यक्ष होने के बाद वे प्रतिदिन संध्या समय मठ-प्रांगण में टहलते थे तथा सेवकों के साथ शास्त्र चर्चा भी करते। एक दिन ब्रह्मसूत्र के भाष्य का प्रसंग चल रहा था। उन्होंने सेवक से पूछा—'आज क्या पढ़ोगे।' सेवक ने कहा : "प्रथम अध्याय का 'आनन्दमयोऽभ्यासात्' प्रकरण सूत्र।" यह कहकर सेवक शांकर भाष्य का बंगला अनुवाद सुनाने लगे। सुनते ही उन्होंने कहा—"नहीं, वह शंकर का मत नहीं है, टीकाकार का मत है।" सेवक ने जोर देकर कहा—"नहीं महाराज, यहाँ पर एकदम स्पष्ट लिखा हुआ है, यह शंकर का मत है।' महाराज ने कहा—"नहीं रे, वह टीकाकार का मत है।" दो दिनों के बाद पुस्तक पुनः पढ़कर सेवक ने देखा कि महाराज की ही बात सही थी। आचार्य शंकर ने अपने भाष्य में अन्य वेदान्तियों के मत की भी चर्चा की है एवं बाद में उसका खंडन किया हैं। सेवक ने भूलवश सोचा था कि वह शंकर का ही मत है। महाराज की स्मरण शक्ति से वह आश्चर्यचकित हो गया। उसे मालूम था कि प्रायः चौबीस सालों से महाराज ने कोई भाष्य नहीं पढ़ा है। उसके पहले पहल उन्होंने जो पढ़ा था उसको ठीक-ठीक याद रखे हुए हैं। सेवक ने उनकी स्मरण शक्ति का परिचय एकबार और पाया था जब गंभीरमहाराज ने ब्रह्मसूत्र भाष्य के अंग्रेजी अनुवाद में opponent के स्थान पर Prima facie कर देने के लिए कहा। पूजनीय महाराजने ब्रह्मसूत्र के अंग्रेजी अनुवाद में 'वेदान्ती' शब्द का अनुवाद किया था 'Opponent'। महाराज के ब्रह्मसूत्र भाष्य के द्वितीय संस्करण की भूमिका लिखते समय पंडित डा. टी. एम. पी. महादेवन ने उनको पत्र द्वारा अनुरोध किया था 'Opponent' की जगह 'Prima facie' करने के लिए। यह भी सोलह साल पहले की बात थी।

स्वामी गंभीरानन्द जी ने अपने गुरुदेव महापुरुष महाराज के जीवन में देखा था कि शारीरिक कष्ट या रोग होने पर वे अपना मन शरीर से हटाकर आत्मा में एकत्र कर लेते थे। गंभीरानन्द जी ने भी आजीवन यही अभ्यास करने की चेष्टा की थी। अपने किसी कष्ट अथवा रोग की बात आसानी से किसी को नहीं कहते थे, सेवक को भी नहीं। सन् १९७७ में उनके पैर की हड्डी टूट गयी थी। उस समय वे मठ-मिशन के महासचिव थे। पहले तो सेवक को कुछ भी बताने के लिए राजी नहीं हुए। बाद में पता चलने पर उनको सेवा प्रतिष्ठान भेजा गया। उनके पैर में पट्टी बाँध दी गयी। कष्ट के बावजूद उनके मुख पर पीड़ा का कोई चिन्ह नहीं दिखाइ देता। एक दिन उनके शयन-कक्ष में न्यासियों की मिटिंग चल रही थी। वयोवृद्ध संन्यासी स्वामी अभयानन्द जी (भरत महाराज) ने जब पैर की अवस्था के बारे में पूछताछ की तब 'वह कुछ नहीं' कहकर उन्होंने बात टाल दी। सन् १९८५ में जब उनके हृदय में पेस मेकर लगाया गया तब भी वे मानो निर्विकार थे। एक वरिष्ठ संन्यासी ने जब उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा तब वे बोले : "हाँ, ऐसा लगता है कि मैं यमपुरी की ओर आगे बढ़ रहा हूँ। "थोड़ी

देर रुककर फिर बोले, "नहीं, यमपुरी की ओर नहीं। एकमेवाद्वितीयम्। अहं ब्रह्मास्मि। मैं यम के द्वार पर क्यों जाने लगा? जिस को जाना है जाने दो। मैं नहीं जाऊँगा।" इस तरह की सहनशीलता ने उनके जीवन को महिमान्वित किया था। उनका जीवन तितिक्षा का उज्ज्वल दृष्टांत है।

विभिन्न घटनाओं के माध्यम से हमें उनकी महत्ता का परिचय मिलता है। जब देवघर में थे तब उन्होंने स्वामी काशीश्वरानन्द जी (वर्तमान में वयोवृद्ध साधु) को पत्र लिखकर रुद्राक्ष की एक माला भेजने का अनुरोध किया था। काशीश्वरानन्द जी ने माला खरीदकर उन्हें भेजी थी। संघाध्यक्ष होने के बाद जब गंभीरानन्द जी एकबार कामारपुकुर (श्री रामकृष्ण का जन्म स्थान) गये तब वहाँ पर उनकी भेंट काशीश्वरानन्द जी से हुई। मुलाकात होते ही वे बोल उठे: "आपने हमें जो माला खरीदकर भेजी थी वह अभी भी मेरे पास है।" मठ के एक डाक्टर ब्रह्मचारी ने एक बार उनसे एक जोड़े जूते की माँग की थी। उस समय उनके पास उस ब्रह्मचारी को देने के लिए जूते नहीं थे। करीब छः महीने बाद राँची में एक भक्त ने उनको एक जोड़े जूते दिये। उस ब्रह्मचारी की बात उन्हें तब भी याद थी। अतएव सेवक से कहा: "मठ में ले जाकर अमुक ब्रह्मचारी को दे देना।" उक्त ब्रह्मचारी को जब जूते दिये गये तब आश्चर्यचकित होकर वह सोचने लगा कि छः महीने बीत जाने पर भी महाराज उनकी प्रार्थना को भूले नहीं थे। एक बार वे जमशेदपुर गये हुए थे। जुबिली पार्क में वे टहलने गये। उनके साथ थे वहाँ के अध्यक्ष वयोवृद्ध संन्यासी स्वामी आदिनाथानन्द जी। उन्होंने कहा: "ज्यादा नहीं टहलेंगे। मात्र दस मिनट।" ठीक दस मिनट के बाद गंभीरानन्द जी ने सेवक से कहा: "चलो वापस चलेंगे। कालीदा वृद्ध लोग हैं, उनकी बात माननी होगी।" ऐसा कहकर वे वापस लौट गये।

ग्रामीण विकास एवं राहत कार्य के प्रति गंभीरानन्द जी का विशेष उत्साह था। संघ के कार्य का जिससे विस्तार हो वह बात बारम्बार कहते। उस वृद्धावस्था में भी वे संघ के विभिन्न अनुष्ठानों, राहत शिविरों एवं गाँवों में गये थे। उनके अध्यक्ष काल में मठ-मिशन के १० केन्द्रों की वृद्धि हुई है। चार वर्षों से भी कुछ कम ही समय के लिए अध्यक्ष थे। किन्तु उसी अवधि में उन्होंने कई मन्दिर, पुस्तकालय आदि का उद्घाटन अथवा भित्तिस्थापन किया है।

सेवकों के प्रति उनकी प्रखर दृष्टि थी। वे लोग नियमित शास्त्रादि पाठ, जप-ध्यान आदि कर रहे हैं या नहीं इसका ध्यान रखते थे। सेवक लोग भी उनको नियमित ढंग से कोई न कोई ग्रन्थ पढ़कर सुनाते। ऐसा भी हुआ है कि सेवक पढ़ना छोड़कर उन्हें चाय देने आये हैं। जाने पर असंतोष प्रकट करते हुए कहते, "तुम्हारे पढ़ने का निर्दिष्ट समय समाप्त होने पर ही मुझे चाय देना। उससे यदि मेरे चाय पान में देरी हो तो होने दो। विशेष-विशेष दिनों मे सेवकों को गंगास्नान करने के के लिए भेज देते थे। कहते: "अभी यह सब नहीं करने पर वृद्धावस्था में नहीं कर पाओगे।" फिर इसकी खबर लेते कि सेवकों ने गंगास्नान किया है या नहीं। सेवकों की परीक्षा में उन्होंने कुछ संन्यासियों को कहा था: 'वे लोग (सेवक लोग) मेरे शरीर की सेवा करते हैं और मैं उनके मन की सेवा करता हूँ।" सेवकों के साथ खूब हँसी-मजाक भी वे करते थे।

ठीक एक वर्ष पहले बेलड़ मठ स्थित अपने कमरे में वे एकदम तैयार होकर बैठे थे। सेवक से उन्होंने कहा भी था: "देखो, कैसे तैयार होकर बैठा हूँ मैं। यम के आने से भी पहले जाने को मैं तैयार हूँ।" १९८८ के जून में वे सेवक से बोले थे, "एक साल और मेरी सेवा कर लो, उसके बाद श्मसान ले जाना।" महाप्रयाण का संकेत उसी उक्ति में दिया था। लेकिन कोई समझ नहीं पाया था।

संघाध्यक्ष होने के बाद प्रशासनीय कार्यों से वे

अपने आपको अलग रखते थे। अगर कोई समस्या लेकर उनके पास जाते तो उसकी बात सुनते और उसको सलाह देते। जिज्ञासुओं के भी प्रश्न के उत्तर वे देते जो पहले वे नहीं देते थे।

एकबार एक युवक उनसे मिलने आया था। सेवक को उन्होंने बाहर जाने के लिए कहा। युवक कमरे में था। अचानक सेवक ने सुना कि महाराज उस युवक को जोरों से कुछ कह रहे हैं। सेवक कुछ समझ नहीं पाया और दौड़कर कमरे की ओर गया। अंदर जाकर देखा कि महाराज युवक को जोर से कह रहे हैं, "हां मैंने ठाकुर को देखा है। तुम भी करो तो तुम भी देख सकोगे।" युवक को उसके प्रश्न का उत्तर मिल चुका था। आनन्द के साथ वह महाराज को प्रणाम करके चला गया।

महासमाधि के कुछ महीनों पूर्व से उन्हें सर्वदा जप करते हुए देखा जाता था। सोए-सोए कर-जप किया करते। बैठकर माला जपते। सेवक ने ऐसा पहले कभी नहीं देखा था। सर्वदा अन्तर्मुखी। दुर्गापूजा के बाद उत्तर भारत के कई केन्द्र घूमकर मठ वापस आये १० दिसम्बर को। दूसरे दिन एक वरिष्ठ संन्यासी ने उनको कहा : "महाराज, देखा कि आप पहले की अपेक्षा अच्छी तरह चल रहे हैं।" महाराज बोले : "हाँ, वैसे तो अच्छा ही हूँ। यह देखो, अभी अभी थोड़ा टहल कर आया हूँ। किन्तु मैं समझ रहा हूँ कि अब ज्यादे दिन नहीं रहूँगा।" उस समय भी उनकी बातों पर कोई विश्वास नहीं कर सका था।

१५ दिसम्बर को वे वामुनमुड़ा, शिकड़ा, बारासात एवं नवद्वीप गये थे। (प्रथम तीन स्थान पश्चिम बंगाल के २४ परगना जिले में है।) यही उनका अंतिम दौरा था। बारासात से नवद्वीप जाने के पहले वे श्री रामकृष्ण को प्रणाम करने मन्दिर में गये। उस दिन बहुत देर तक उन्होंने प्रणाम किया। वहां से निकल कर श्री मन्दिर की ओर उन्होंने पुनः देखा। सेवकों को उनका यह आचरण अस्वाभाविक लगा था। अपने गुरु के पास से उनका यह अंतिम विदाई ग्रहण था। बारासात उनके गुरुदेव (महापुरुष महाराज) का जन्मस्थान है।

बारासात में उनके शरीर का तापक्रम बढ़ा था। किन्तु सेवकों से कुछ नहीं कहा। इसी शरीर को लेकर २० दिसम्बर को नवद्वीप आये। तापक्रम के साथ-साथ पैर में थोड़ी सूजन दिखाई पड़ी। स्थानीय डाक्टर ने उनकी चिकित्सा की। २२ एवं २३ दिसम्बर को दीक्षा थी। मन में संदेह था कि दीक्षा निर्विघ्न होगी या नहीं। दीक्षा के बाद गुरु प्रणाम के समय पैर से मौजा खोल देने के लिए कहा। सेवक ने जब आपत्ति की तब उन्होंने कहा : "मौजा खोल दो। वे लोग तो बारबार प्रणाम करने का सुयोग नहीं पायेंगे।" दीक्षा के बाद कमरे में आकर कहा : "I was afraid whether I could continue or not, but it went off very well." उसी दिन रांची की एक शिष्या के लड़के की शादी के अवसर पर आशीर्वाद देते हुए एक चिट्ठी लिखी। यह उनकी स्वाक्षरित अंतिम चिट्ठी थी।

२३ दिसम्बर की सुबह में उठकर उन्होंने सेवक से कहा : "शरीर बहुत खराब लग रहा है। जप नहीं कर पाऊँगा। सोया रहूँगा।" कुछ देर तक विश्राम करने के बाद उठकर बैठे। उस समय तबीयत कुछ अच्छी लग रही थी। दाढ़ी बनाते-बनाते जाँघ के ऊपर ताल दे-देकर अपने आप में मस्त होकर गाने लगे। 'एकरूप, अरूप-नाम-वरण। अतीत आगामी-कालहीन देश हीन, सर्वहीन "नेई नेई" विराम यथाय।' वह दीक्षा का दिन था। सब मंगलपूर्वक समाप्त हुआ। संध्या के समय कफ के साथ थोड़ा खून निकला।

२४ दिसम्बर की सुबह में नवद्वीप से मठ के लिए प्रस्थान किया। सेवकों को सांत्वना दी : "हाँ, सब कुछ ठीक ही हुआ। केवल शरीर अस्वस्थ हो गया है। तुम लोगों का दोष नहीं है।" मठ में पहले ही सूचना दे दी गयी थी : मठ में आकर उन्होंने दोपहर का भोजन

किया। विश्राम के बाद सेवाप्रतिष्ठान में भर्ती किया गया। डा. समरेन्द्र नाथ राय, डा. कान्तिभूषण बक्शी एवं डा. निरंजन बनर्जी पूजनीय महाराज के चिकित्सक थे। उन्हें पूर्ण रूप से 'बेड रेस्ट' करने को कहा गया। श्वास-प्रश्वास की सुविधा के लिए ऑक्सीजन दिया गया। जांच करने पर पता चला कि दोनों फेफड़े कफ से जाम हो गये हैं।

२५ दिसम्बर को वैसी ही अवस्था थी। उस दिन रामकृष्ण मिशन की वार्षिक सभा बेलुड़ मठ में थी। उनको ही उसमें सभापतित्व करना था। इसीलिए उन्होंने अपनी शुभेच्छा वाणी भेजी। सभा में उसका पाठ किया गया। यही उनकी अंतिम शुभेच्छा वाणी थी।

२६ दिसम्बर को सुधार के लक्षण थे। आशंका का कोई कारण नहीं था। बिछावन पर सोये-सोये उन्होंने गाना शुरू किया : 'नदियार पथे पथे, कांगालेर वेशे हरि नाम प्रेम विलाइले धरातले अवतरि' (हे प्रभु, इस धरातल पर अवतीर्ण होकर तुमने कंगाल के वेश में नदिया के रास्तों घाटों पर हरि-प्रेम का वितरण किया।) गान समाप्त करके कहा—'इति गौरांग।' प्रतिदिन मठ से कोई न कोई उन्हें देखने जाते। रात को उन्होंने स्वप्न में देखा—'एक बड़ा सा निर्जन मैदान, अकेले वहाँ पर बैठे हुए हैं।' स्वप्न की बात साधारणतः किसी को कहते नहीं थे, किन्तु उस दिन सेवक को स्वप्न की बात बतायी।

२७ दिसम्बर मंगलवार। उस दिन गंभीरानन्द जी बहुत अच्छे थे - प्रदीप निर्वापित होने के पूर्व दीपशिखा की अकस्मात् उज्ज्वलता की तरह। मन बहुत हल्का था। शरीर का तापक्रम ठीक था। भोजन साधारण तौर पर। अपराह्न सा. तीन बजे चाय-पान हुआ। ठंढी चाय पी रहे थे। चाय पीते-पीते मजाक करते हुए बोले : "एक तो ठंढी चाय और उस पर मिलावट।' सेवक ने सविस्मय सोचा 'मिलावट!' पूजनीय महाराज ने रहस्य प्रकट करते हुए कहा : 'वह जो तुमने दवा खिलायी।' चाय के पहले उनको Antibiotic दवा खिलायी गयी थी। उसी को मजाक बनाकर कहा—'मिलावट की हुई चाय।'

संध्या साढ़े पाँच बजे मठ से स्वामी हिरण्मयानन्दजी एवं स्वामी आत्मस्थानन्द जी उनको देखने गये हैं। स्वामी गहनानन्दजी पहले ही मुलाकात करके अन्यत्र चले गये हैं। वे लोग पूजनीय महाराज के कमरे में थे। उन्होंने मठ का समाचार जानना चाहा। स्वामी हिरण्मयानन्द जी ने बतायी :'अरुणाचल के बमडिला में नये केन्द्र खुलने की बात, त्रिपुरा में आमतोलि एवं धलेश्वर केन्द्र अंगीभूत करने की बात, एक ब्रह्मचारी के संघ में पुनः प्रवेश लेने की बात, तथा हिंगलगंज एवं गोसावा में राहतकार्य की बात।' सब ध्यान से सुनने के बाद कहा : 'अच्छी बात है।' उनलोगों ने देखा कि पूजनीय महाराज को बातचीत करने में असुविधा हो रही है। इसीलिए उन्होंने कहा : 'महाराज, विश्राम कीजिए। अधिक बातें मत कीजिएगा।' वे लोग उनसे विदा लेकर चले आये। यही उनका अंतिम विदा-ग्रहण था। उस समय भी किसी को इस बात का थोड़ा भी अनुमान नहीं हुआ कि कुछ क्षणों के बाद ही वे इहधाम को त्याग देंगे।

६ बजे शाम को उन्होंने पानी पीना चाहा। बहुत ही बेचैनी थी। थोड़ा विश्राम करके धीरे-धीरे पानी पिया। डाक्टर ने ब्लड प्रेसर देखा ठीक था। किन्तु नाड़ी की गति अधिक थी। शरीर का तापक्रम १००.६ डिग्री फारेनहाइट। शौच लगा। तभी भी सेवक लोग कुछ समझ नहीं पाये।

६ बजकर तीस मिनट। पूजनीय महाराज को खाँसी हुयी। कफ के साथ रक्त निकला। सेवकों से कहा : 'देखो, शरीर का तापक्रम बढ गया है, ब्लड प्रेसर भी बढ़ा है। डा. राय को खबर दो।' सेवक ने 'क्रोसीन' की गोली खिलायी। डाक्टर को सूचना दी गयी। अस्पताल के रजिस्ट्रार आये। पूजनीय महाराज को बहुत बेचैनी लग रही थी। जोरों से श्वास ले रहे थे। शरीर

पर पसीना आ गया है। डाक्टर ने कहा : 'I am feeling uneasiness.' यही उनके अंतिम शब्द थे। सेवकों ने देखा -पूजनीय महाराज ने तीन बार दीर्घ श्वास लिया। मानो श्री ठाकुर-माँ-स्वामीजी को उन्होंने अंतिम प्रणाम कहा। उसके बाद ही उनका स्थूल शरीर शान्त हो गया। समय हुआ था शाम के सात बजकर सत्ताइस मिनट।

स्वामी गंभीरानन्द के महाप्रयाण की खबर मठ में आयी। सबसे अधिक वयोवृद्ध सन्यासी स्वामी अभयानन्द जी को जब उनकी महासमाधि की बात बतायी गयी, तब वे बोल उठे : 'गंभीरानन्द भी चला गया।' इतना कहकर वे स्तब्ध हो गये। मठ से प्राचीन साधु लोग शीघ्र सेवा प्रतिष्ठान गये। स्वामी गंभीरानन्द की महासमाधि का संवाद आकाशवाणी एवं संवाद पत्रों के माध्यम से द्रुत गति से प्रचारित हुआ। पुष्प से ढँका उनके शरीर को मठ लाया गया। दूसरे दिन (०८ दिसम्बर १९८८) उनके शरीर को स्वामीजी के आम्रवृक्ष के नीचे भक्तों के दर्शन हेतु रखा गया। स्वामी गंभीरानन्द जी के पार्थिव शरीर को अपराह्न तथा दो बजे अग्नि में समर्पित किया गया। पंचभूत की देह पंचभूत में विलीन हो गयी। आसमान में उस समय कहीं-कहीं बादल थे। सूर्य का रक्तिम प्रकाश पश्चिमाकाश में विलीन होता जा रहा था।

स्वामी गंभीरानन्द जी का भौतिक शरीर पवित्र चिताग्नि में भस्मीभूत हो गया है। वह स्थान पुष्पों से आच्छादित होकर इस बात की साक्षी दे रहा है कि अब वे पार्थिव शरीर में नहीं है। किन्तु वे हम-लोगों की स्मृति में सजीव है। वे भक्तों के हृदय में उज्ज्वल हैं। वे भक्तों के लिए ध्यान के विषय हैं। उनका सुन्दर आदर्श जीवन अमल-धवल चरित्र, आध्यात्मिक भाव सम्पद हमलोगों में प्रत्येक के लिए चिर प्रेरणादायक हैं। इसीलिए कवि गाते हैं—

तुम्हारी समाधि है पुष्पाच्छादित
कौन कहता है तुम नहीं हो?
मन तो कहता है तुम हो।

[रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के महाध्यक्ष द्वारा ८ जनवरी १९८९ को प्रकाशित बंगला पुस्तक 'स्वामी गंभीरानन्द' के आधार पर—स०।]

कृतज्ञता ज्ञापन

इस विशेषांक के लिए निम्नोक्त सज्जनों ने आर्थिक दान देकर सहयोग करने की कृपा की है। हम हृदय से उनके कृतज्ञ हैं एवं उनके मंगल की ठाकुर, माँ, स्वामी जी से आंतरिक प्रार्थना करते हैं।

	रु०	पै०
१. श्री सतीश पी० जावंजल - यशवन्त कॉलोनी, अमरावती, महाराष्ट्र	२५	००
२. श्री चन्द्र मोहन—टुण्डला, आगरा	१००	००
३. श्री उदयवीर शर्मा, प्रिंसिपल पुरा-बैरागढ़ (म० प्र०)	१००	००
४. श्री अशोक कौशिक मालवीयनगर, नई दिल्ली	३०	००
५. श्री हरि सिंह "सैनपुरवाले"- फतेहपुर सीकरी, आगरा	११	००
६. श्री मातादीन मिश्र मैनेजर, पी० एन बी० सोनपुर, सारण बिहार	१००	००
७. श्री जी० के० दीक्षित - सयाजीगंज, बड़ोदा	१०१	००
८. श्री सुशील कुमार लाल—लोहानीपुर, पटना	१०	००
९. श्री कमला प्रसाद, आइ० ए० एस० —मछुआटोली पटना	५१	००

पूजनीय गम्भीर महाराज की विनोदप्रियता

—एक संन्यासी

श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज अन्तरंग भक्तों तथा संन्यासियों के बीच 'गंभीर महाराज' के नाम से परिचित थे। यह नाम उनके स्वभाव के अनुरूप ही था। अक्सर वे गंभीर मुद्रा में रहते थे; यहाँ तक कि कुछ लोग उनसे मिलने में भी हिचकिचाते थे। समय के वे बड़े पाबन्द थे तथा संक्षेप में अपनी बातचीत निपटा लेते थे। वे स्वयं भी अपने बारे में यही कहते थे। जब वे रामकृष्ण संघ के महासचिव थे उस समय उन्होंने एकबार रामकृष्ण संघ के तत्कालीन सहायक सचिव श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज (वर्तमान में रामकृष्ण संघ के महाध्यक्ष) को हँसते हुए कहा था "देखिए, मेरे द्वारा किसी से मधुरतापूर्वक दीर्घ संभाषण नहीं होगा, ऐसे अवसर पर लोगों को मैं आपके पास भेज दिया करूँगा; और आपके द्वारा डाँटने का कार्य संभव नहीं है, जब किसी को डाँटने की आवश्यकता होगी तो मेरे पास भेज दिया कीजिएगा।"

किन्तु, जिन लोगों को उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आने सौभाग्य प्राप्त हुआ था, वे जानते हैं कि इस गंभीर आवरण के पीछे कितनी सरलता, मधुरता तथा सूक्ष्म विनोदप्रियता विद्यमान थी !

एकदिन प्रातः राँची आश्रम में साधु-ब्रह्मचारीगण पूजनीय महाराज को प्रणाम कर रहे थे। उनका अच्छा मूड देखकर कुछ साधु-ब्रह्मचारी आपस में विनोद करने लगे और पूजनीय महाराज को मध्यस्थ बनाते हुए पूछा—"महाराज, आपका इस बारे में क्या मन्तव्य है ?" पूजनीय महाराज ने मुस्कुराते हुए कहा—"तुम लोगों का विनोद भला मैं कैसे समझ सकता हूँ ? मेरा नाम तो गंभीर है !" सभी हँस पड़े।

उनकी सूक्ष्म विनोदप्रियता की झलक मुझे अपने संन्यास जीवन के प्रारंभ से ही मिल गयी थी। जिस दिन मैं रामकृष्ण संघ में प्रवेश लेने हेतु बेलुड़ मठ गया था, उसी दिन शामको उन्होंने मेरा इन्टरव्यू लिया। उस समय वे रामकृष्ण संघ के महासचिव थे। उन्होंने पूछा—"तुम इतने पढ़े-लिखे हो, इतनी अच्छी नौकरी कर रहे हो, फिर क्यों सब छोड़-छाड़ कर इस कष्टप्रद जीवन में आना चाहते हो ? क्या तुम्हें हमारे केन्द्रों में रहने पर जो असुविधाएँ होंगी, उनकी जानकारी है ?" मैंने उत्तर में कहा "मैं सब सोच-विचार कर ही आया हूँ। मुझे संघ को घनिष्ठता से जानने का मौका मिला है। इसके पूर्व संघ के कई केन्द्रों से मेरा सम्पर्क रहा है।" पूछने पर मैंने उन सब केन्द्रों के नाम बताये। इसे सुनकर हंसते हुए उन्होंने कहा—"अरे, ये सभी तो बड़े-बड़े केन्द्र हैं, वहाँ की गतिविधियाँ, वहाँ की आर्थिक अवस्था सभी अन्य तरह की हैं। मैंने भी हार स्वीकार न करते हुए कहा—"हाँ छोटे-छोटे केन्द्रों को भी मैंने देखा है, उन सब असुविधाओं को मैं भलीभाँति जानता हूँ, यह सब सोचकर ही मैं संघ में प्रवेश लेने आया हूँ।" इस पर प्रवेश की सम्मति देते हुए उन्होंने मुस्कुराकर कहा—"ठीक है, यदि कष्ट सहन करना ही चाहते हो तो चले आओ।"

संघ में प्रवेश लेने के कुछ दिनों बाद ही मुझे पता चला कि एक संन्यासी का, जो उन्हें दोपहर में पुस्तकें पढ़कर सुनाते थे, ट्रान्सफर हो गया है। (पूजनीय महाराज के नेत्र खराब हो चुके थे अतः स्वयं नहीं पढ़ पाते थे)।

मैंने सोचा, यह सुनहरा मौका है, क्यों न महाराज के पास प्रस्ताव रखूँ कि क्या मैं यह कार्य कर सकता हूँ ? ऐसा करने से उनके दिव्य संग का लाभ मिलेगा और कुछ सीखने को भी मिलेगा। ऐसा सोचकर एक दिन साहस बटोरकर उनके समक्ष अपनी इच्छा प्रकट की। एक नवागत ब्रह्मचारी होने पर भी उन्होंने तुरंत सम्मति

प्रदान की। दूसरे ही दिन से पढ़ना प्रारंभ हो गया। इस समय पूजनीय-महाराज की तीक्ष्ण बुद्धि, कार्यदक्षता, समयानुवर्तिता, सूक्ष्म विनोदप्रियता आदि का घनिष्ठ परिचय मिला। एकदिन दोपहर को शायद निर्धारित समय पर नहीं गया था, ४-५ मिनटों की देर हो गयी थी। पूजनीय महाराज ने कुछ कहा नहीं, केवल मुस्कुराते हुए, टेबुल पर रखी घड़ी को मेरे सम्मुख रख दिया। मैं लज्जित हो गया। मैंने भूल स्वीकार कर कहा - "अब से ठीक समय पर आऊँगा।" एक दिन पढ़ते समय मैंने एक शब्द का उच्चारण किया 'लिवलीहुड'। उन्होंने धीरे से पूछा—क्या इस शब्द का उच्चारण ऐसा ही होता है?" मुझे अपने अंग्रेजी ज्ञान पर मूर्खतापूर्ण आत्मविश्वास था। मैंने कहा—"जी, हाँ" पूजनीय-महाराज ने मुस्कुराते हुए चैलेन्ज किया—"क्यों न पास में पड़ी डिक्शनरी को देख लिया जाय? देखें कौन जीतता है?" मैंने उत्सुकतापूर्वक डिक्शनरी खोलकर देखा। अफसोस! इसका उच्चारण दिया था—'लाइवलीहुड।' पूजनीय महाराज ने कुछ कहा नहीं, केवल एक अर्थसूचक मुस्कान भर दी। उस दिन मेरा अंग्रेजी ज्ञान का गर्व चूर हो गया और तब से पूजनीय महाराज के पास पढ़ने में और भी सावधान रहने लगा।

बेलुड़ मठ की ही बात है। बुद्ध पूर्णिमा के दिन प्रणाम करते हुए मैंने पूजनीय महाराज को कहा—"महाराज, आज विशेष प्रणाम स्वीकार कीजिए, आज 'Penta blessed day' (पाँच गुण धन्य दिवस) है।" पूजनीय महाराज ने कहा—"नहीं, नहीं इसे 'Thrice blessed day' (तिगुना धन्य दिवस) कहते हैं।" मैंने कहा—"नहीं महाराज, मैं ही ठीक हूँ।" पूजनीय महाराज ने कहा—"सिद्ध करो।" मैंने उत्तर में कहा - "आज की बैशाख पूर्णिमा के दिन ही भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था, आज के दिन ही उन्हें बोधिज्ञान प्राप्त हुआ था, आज के दिन ही उन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ और आज चन्द्रग्रहण भी है। फिर आज मठ में विशेष उत्साह है, क्योंकि पूजनीय प्रेसीडेन्ट महाराज, पूजनीय भरत महाराज आदि बहुत दिनों बाद यात्रासे वापस लौट रहे हैं। इस प्रकार यह पाँच गुना धन्य दिवस है।" पूजनीय महाराज मुस्कुराकर चुप रह गये। दूसरे दिन एक वरिष्ठ संन्यासी ने मुझे बुलाकर कहा "कल तुमने ऐसी कौन-सी बात पूजनीय गंभीर महाराज से कर दी? तुम्हारे बारे में वे कह रहे थे—कल का छोकरा अभी कुछ दिनों पहले संघ में प्रवेश लिया है, मुझे हराकर चला गया? उसे भेजना तो मेरे पास, उसे हराकर दम लूँगा। आज महाराज के पास जाओगे तब पता चलेगा।" उस दिन दोपहर को जब मैं पूजनीय महाराज के पास गया तब उन्होंने कहा- "देखो. कल तुम क्या कह रहे थे—पाँचगुना धन्य दिवस' न?" मैंने कहा—"जी महाराज।" पूजनीय महाराज ने तब चपलतापूर्वक हँसते हुए कहा—"तब तो तुम हार गये। देखो, कल छः गुना धन्य दिवस था। कल भारत के राष्ट्रपति का जन्मदिवस भी था।" मैंने हँसते हुए कहा—"नहीं, नहीं, आध्यात्मिक घटनाओं के साथ राजनैतिक घटनाओं को जोड़ने से नहीं चलेगा। खैर, फिर भी मैं अपनी हार मान लेता हूँ।"

इसके ठीक एक माह बाद स्नानपूर्णिमा का दिन आया। प्रातः प्रणाम करके मैंने पूजनीय महाराज से हँसते हुए कहा - "महाराज आज चौगुना धन्यदिवस है। महाराज ने हँसकर पूछा—"किस प्रकार?" मैंने बताया—आज के दिन जगन्नाथजी का महास्नान होता है, आज के ही दिन बेलुड़ मठ में श्रीरामकृष्णदेव का महास्नान भी होता है, आज के ही दिन दक्षिणेश्वर मंदिर का समर्पण हुआ था और फिर आज पूजनीय विरजानन्दजी महाराज (रामकृष्ण संघ के छठवें महाध्यक्ष) का जन्मदिन भी है। पूजनीय महाराज ने हल्की-सी मुस्कान भर दी।

अप्रैल १९७९ में पूजनीय गम्भीर महाराज रामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष चुने गये। इसके कुछ दिनों बाद ही श्रीरामकृष्ण आश्रम, राजकोट के भव्य मंदिर की समर्पण-विधि हुई। उस भव्य समारोह में भाग लेने हेतु रामकृष्ण संघ के प्रायः सभी वरिष्ठ संन्यासी तथा सैकड़ों भक्त

देश-विदेश से आये थे। पूजनीय गंभीर महाराज भी राजकोट पधारे थे। जिस दिन उनका आगमन हुआ उसी दिन शाम को वे मंदिर के सामने वाले प्रांगण में टहल रहे थे। उसी समय रामकृष्ण संघ के तत्कालीन महाध्यक्ष पूजनीय वीरेश्वरानन्दजी महाराज टहलते हुए उस जगह चले आये। पूजनीय गंभीर महाराज ने तुरंत घुटने टेककर भक्तिपूर्ण भाव से उन्हें प्रणाम किया। यह एक अपूर्व दृश्य था। संघ के उपाध्यक्ष संघ के महाध्यक्ष को सब भक्तों के सामने रास्ते पर एक शिशु की भाँति घुटने टेककर प्रणाम कर रहे थे। पास ही कुछ और वरिष्ठ संन्यासी खड़े थे। उन लोगों की ओर इंगित करते हुए पूजनीय गंभीर महाराज ने एक शिशु की भाँति सरलता से हँसते हुए कहा—"देखिए तो महाराज, ये लोग मेरा मजाक उड़ा रहे हैं और कह रहे हैं—'अब तो आप का प्रमोशन हो गया – आप उपाध्यक्ष बन गये'।" पूजनीय वीरेश्वरानन्दजी महाराज ने हँसते हुए कहा—ठीक ही तो कह रहे हैं वे लोग। अब आप सचमुच उपाध्यक्ष ही तो हैं। (उपाध्यक्ष का एक अर्थ "जिसकी आँखें थोडी खराब हों—यह भी होता है, और पूजनीय गंभीर महाराज की आँखों का प्रकाश कुछ क्षीण हो गया था।)

पूजनीय गंभीर महाराज राँची में निवास कर रहे थे। राँची आश्रम का एक दक्षिण भारतीय ब्रह्मचारी एक बार उनके पास गया। वह पू० महाराज के पास शास्त्र-अध्ययन करना चाहता था। उसे बंगला भाषा का ठीक ज्ञान नहीं था। फिर भी उसने पू० महाराज से बंगला में कहा—"महाराज, आमि आपनार क्लास निते चाइ।" (महाराज, मैं आपकी क्लास लेना चाहता हूँ।) पू० महाराज समझ गये कि गड़बड़ कहाँ हुई है। फिर भी विनोद करने के इरादे से उन्होंने अन्य साधु-ब्रह्मचारियों को बुलाकर हँसते हुए कहा "देखो तो, यह क्या कहना चाहता है?" सबके सामने उस ब्रह्मचारी ने फिर वही बात दुहरायी। सभी साधु-ब्रह्मचारी ठहाका मारकर हँस पड़े।

एकबार पूजनीय महाराज ब्रह्मचारियों के लिए क्लास ले रहे थे। स्वामी विवेकानन्द जी का शिकागो व्याख्यान पाठ हो रहा था। मैंने पूछा—"स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—वेद का अर्थ ग्रंथ से नहीं है—इसका अर्थ ज्ञानराशि नहीं है—केवल आध्यात्मिक सत्यों के अन्वेषणों का भांडार है। मैं यह ठीक समझ नहीं पा रहा हूँ। इसका मतलब तो यह हुआ कि आज भी किसी को किसी नये सत्य की उपलब्धि हो सकती है। तो क्या वह भी वेद का अंग बन जायगी। "पू० महाराज ने मुस्कुराते हुए कहा—"हाँ आज भी सत्य को उपलब्धि किसी को हो सकती है, किन्तु उसे संस्कृत में नहीं, अन्य भाषा में होगी।" मैंने महाराज का सूक्ष्म विनोद समझा नहीं इसलिए फिर से पूछा—"क्यों महाराज, मैं समझा नहीं।" "पू० महाराज ने हँसते हुए कहा—"इतना भी नहीं समझते। अरे, तुम संस्कृत तो जानते नहीं अतः तुम्हें नये सत्य की उपलब्धि अन्य भाषा में ही होगी।"

एकबार पूजनीय महाराज ब्रह्मचारियों के लिए कठोपनिषद् पर क्लास ले रहे थे। नचिकेता के प्रलोभनों से विचलित न होनेवाले प्रसंग की चर्चा चल रही थी। इस सन्दर्भ में हँसते हुए उन्होंने एक प्रसंग सुनाया। एकबार स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज (श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग पार्षद) इसी प्रसंग की चर्चा कर रहे थे। उन्होंने एक संन्यासी से कहा—"अभी तुम जो कुछ कहो किन्तु सचमुच तुम्हारे सामने ये प्रलोभन रख दिये जायँ तो क्या नचिकेता के समान उन्हें ठुकरा सकोगे? प्रलोभन सामने आने पर सारा वैराग्य छू हो जायगा?"

इसके कुछ वर्षों के बाद की बात है। मेरी संन्यास-दीक्षा होनेवाली थी। बेलुड़ मठ से यह संवाद पाते ही कि मुझे संन्यास दीक्षा की अनुमति मिल गयी है, मैं पूजनीय महाराज के पास चला गया और उन्हें यह समाचार दे दिया। सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने हँसते हुए पूछा—क्या क्या तैयारी करनी होगी इत्यादि।

एक और ब्रह्मचारी के बारे में पूछा कि क्या उसकी भी संन्यास दीक्षा इसी वर्ष होगी। जिस ब्रह्मचारी के बारे में महाराज ने पूछा था उसकी अभी ब्रह्मचर्य दीक्षा भी नहीं हुई थी। रामकृष्ण संघ में यह नियम है कि प्रवेश करने के लगभग ५-६ वर्षों बाद ब्रह्मचर्य दीक्षा होती है। तब उसका नाम बदल जाता है और वह 'अमुक' चैतन्य कहलाता है। इसके ४-५ वर्षों बाद संन्यास दीक्षा होती है तब वह 'अमुक' आनंद कहलाता है। अतः मैंने चुटकी लेते हुए पू० महाराज से कहा "नहीं महाराज, अभी तो उसे 'चैतन्य' भी नहीं मिला, फिर 'आनंद' कहाँ से मिले? पहले चैतन्य, फिर आनंद।" उन्हें इस उक्ति में इतना गूढ़ अर्थ प्रतीत हुआ कि बार-बार आनदपूर्वक दुहराने लगे—"वाह! खूब कहा! पहले चैतन्य फिर आनंद! बिलकुल ठीक है पहले चैतन्य, फिर आनंद!"

जिस दिन मेरी संन्यास दीक्षा होनेवाली थी उसके पिछले दिन अन्य सभी संन्यास प्रार्थियों के साथ मैं पू० महाराज के पास आशीर्वाद लेने गया। उन्होंने पूछा कि कुल कितने लोगों की संन्यास दीक्षा होगी। हमलोगों ने संख्या बतायी। इतने सारे ब्रह्मचारियों की दीक्षा होगी यह जानकर वे इतने प्रसन्न हुए कि हँसते हुए बार-बार बोलने लगे—"वाह, वाह, बहुत अच्छा, और भी लोगों को पकड़ लाओ। अपने मित्रों को, सबको बुला लाओ, सब को संन्यास दीक्षा लेने दो।"

जिस दिन संन्यास दीक्षा हुई उस दिन हम सभी उन्हें प्रणाम करने गये। प्रणाम करते ही उन्होंने मेरा नया नाम (संन्यास नाम) पूछा। जब मैंने अपना नया नाम बताया तो हँसकर कहने लगे—"बाप रे! इतना बड़ा नाम! पोस्टकार्ड के एक सिरे से लिखना प्रारंभ करोगे तो दूसरे सिरे तक जायगा!"

एकदिन मैंने उनसे अनुरोध किया था—पूजनीय महापुरुष महाराज के संस्मरण कहने के लिए। उन्होंने उसे हँसकर उड़ा दिया था। इसके कई वर्षों बाद एकदिन पू० महापुरुष महाराज की जन्मतिथि के दिन भक्तों ने इसकेलिए बहुत आग्रह किया। उस समय वे रामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष थे तथा राँची में निवास कर रहे थे। उस दिन न जाने क्यों, अपने स्वभाव के विपरीत, उन्होंने बड़े चाव से पूजनीय महापुरुष महाराज के अनेक रोचक संस्मरण सुनाये।

इस सन्दर्भ में उन्होंने यह भी बताया कि किस प्रकार पू० महापुरुष महाराज के आशीर्वाद से देवघर आश्रम की आर्थिक अवस्था भी सुधरी थी, जहाँ वे प्रारंभ के वर्षों में कार्यरत थे। उस समय की एक मजेदार घटना का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा—"उस समय देवघर आश्रम की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। मुझे चन्दा एकत्रित करने में काफी तकलीफ होती थी। इस कार्य में मेरी निपुणता कभी नहीं रही। एकबार जब मैं चन्दा एकत्रित करने किसी के घर गया तो मालिक ने चिल्लाकर कहा—"शर्म नहीं आती? यहाँ चौथी मंजिल तक चले आये हो?" पूजनीय महाराज ने हँसते हुए कहा—"मैं तो यह सुनकर तुरन्त वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया।"

एकबार पूजनीय महाराज इलाहाबाद गये थे। कुछ संन्यासी वहाँ से चित्रकूट दर्शन के लिए गये थे। उनके एक सेवक महाराज नहीं जा सके; उन्हें पूजनीय महाराज ने पूछा—"तुमने क्या चित्रकूट पहले देखा है?" सेवक महाराज ने कहा—"नहीं।" पूजनीय महाराज ने हँसते हुए कहा—"मरने के बाद मान लो तुम रामकृष्ण लोक में गये, और ठाकुर (श्री रामकृष्ण देव) ने तुम्हें पूछा कि तुमने क्यों चित्रकूट का दर्शन नहीं किया तो क्या उत्तर दोगे?" सेवक महाराज ने भी हँसते हुए कहा—"महाराज, आपने भी तो चित्रकूट का दर्शन नहीं किया, आपको भी यदि ठाकुर ने यही प्रश्न किया तो आप क्या उत्तर देंगे?" तब पूजनीय महाराज ने हंसते हुए कहा—"मैं उन्हें कहूँगा, आपने भी चित्रकूट का दर्शन नहीं किया, तो मैं कैसे करूँ?"

पूजनीय महाराज जमशेदपुर गये थे। वहाँ के महन्त महाराज (स्वामी आदिनाथानन्द जी महाराज जो श्री माँ के मन्त्र शिष्य हैं के साथ हँसी-मजाक चल रहा था। पूजनीय आदिनाथानन्द जी महाराज जानते थे

कि पूजनीय गंभीर महाराज सदा पेट के रोग से पीड़ित रहते हैं और आइस्क्रीम आदि वस्तुएं वे ग्रहण नहीं कर सकते, फिर भी मजाक करने के उद्देश्य से उन्होंने पूजनीय गंभीर महाराज से पूछा—"क्या आप आईसक्रीम लेना पसंद करेंगे ?" पूजनीय महाराज ने हँसते हुए उत्तर दिया—हाँ, लेने की तो इच्छा है, किन्तु क्या करूँ मेरी जठराग्नि इतनी प्रबल है कि आपका आइसक्रीम गल जायगा !" उपस्थित सभी लोग हँस पड़े।

पूजनीय महाराज कलकत्ता के कांकुड़गाछी योगोद्यान गये हुए थे। उस दिन वहाँ के नवनिर्मित भोजन गृह का उद्घाटन पूजनीय महाराज के हाथों हुआ। जैसे ही महाराज ने टेप काटी, पास ही खड़े योगोद्यान के तत्कालीन महन्त पूजनीय भूतेशानन्दजी महाराज ने अन्य लोगों के साथ जय का घोष किया 'जय श्री गुरु महाराज की जय', 'जय महामायी की जय' 'जय स्वामीजी महाराज की जय' पूजनीय गभीर महाराज ने हँसते हुए हाथ उठाकर कहा—"बोलो, महन्त महाराज की जय ?" पूरा हॉल हँसी से गूंज उठा। भोजन तथा अल्प विश्राम के बाद पूजनीय महाराज बेलुड़ मठ लौट जाने के लिए प्रस्पुत हुए। पूजनीय भूतेशानन्द जी महाराज ने विनयपूर्वक पूछा महाराज, आपको यहाँ आकर कुछ कष्ट तो नहीं हुआ ?' पूजनीय महाराज ने हँसते हुए उत्तर दिया "हाँ, कष्ट तो अवश्य हुआ। आपलोगों ने इतनी प्रकार की खाद्य सामग्रियाँ बनायीं थीं, किन्तु अफसोस ! पेट के रोग के कारण सब खा नहीं पाया !"

पूजनीय महाराज सुबह दाढ़ी बना रहे थे। एक वरिष्ठ संन्यासी उन्हें किसी बात पर राजी करना चाहते थे। बड़ी देर तक वे पूजनीय महाराज को अपनी बात समझाते रहे, किन्तु पूजनीय महाराज पर इसका कोई असर नहीं हुआ। अन्त में हताश हो कर उन्होंने महाराज से पूछा—इतनी बातें किसे सुना रहा था। कुछ तो कहिए।" पूजनीय महाराज ने मुस्कुराकर इशारे से दोनों कान दिखला दिये—एक प्रवेश के लिए दूसरा बाहर जाने के लिए।

प्रतिदिन शाम को पूजनीय महाराज बेलुड़ मठ में निवास स्थान के बाहर के बरामदे में आकर बैठते थे। सेवक महाराज बत्ती कर देते और बाद में महाराज आकर बैठते। एक दिन उन्होंने स्वयं स्वीच दबा दी और बत्ती कर दी। जब सेवक महाराज आये तो उन्होंने हँसकर कहा—"बत्ती करने की ड्यूटी किसकी है ?" सेवक महाराज ने कहा 'मेरी ?' महाराज ने हँसकर कहा—"जिसकी जो ड्युटी है, वही करेगा। दूसरे दिन फिर से महाराज स्वयं बत्ती करके बैठ गये। सेवक महाराज ने कहा—"यह क्या महाराज, आप स्वयं अपने बनाये नियम को भंग कर रहे हैं। आपने क्यों बत्ती कर दी ?" महाराज ने हँसते हुए कहा—"Change is the signe of life (परिवर्तन ही जीवन है।)"

पूज्य महाराज की यह सूक्ष्म विनोद वृति उनकी महासमाधि तब अक्षुण्ण बनी रही। महासमाधि के एक दिन पहले जब उन्हें अस्पताल में फीडिंग कप द्वारा चाय पिलायी जा रही थी तब उन्होंने उस अत्यन्त अस्वस्थ अस्वस्थ अवस्था में भी चुटकी लेते हुए कहा—"अरे यह कैसी चाय पिला रहे हो ? एक तो यह ठण्डी है और फिर मिलावटी।" सेवक महाराज समझ नहीं पाये कि यह मिलावटी कैसे हो गयी। पू० महाराज ने हँसते हुए कहा "अरे समझे नहीं ! अभी दवा जो पिलाई थी। वास्तव में पूज्य गम्भीर महाराज बाहर से गम्भीर होने पर भी सूक्ष्म विनोद वृत्ति (Sense of humour) रखते थे तथा कठोरता के आवरण के द्वारा अपने मृदु हृदय को छिपाये रखते थे।

सागर तीरे

श्री गुरुदेव के चरणों तले

श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज

एक बार महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द) को रामकृष्णदेव के संबंध में कुछ कहने का अनुरोध किया गया था; इसके उत्तर में उन्होंने कहा था, "हम-लोग उनके प्रेम से मुग्ध होकर उनके पास गये थे, उनके जीवन की घटनाओं एवं उपदेशों को याद रखने की ओर हमलोगों की दृष्टि नहीं थी।" महापुरुष महाराज के संस्मरण लिखते समय मुझे भी यही बात याद आती है। जबतक वे नरदेह में थे तबतक मुझे दूर ही रहना पड़ा था—देवघर विद्यापीठ में। करीब डेढ़ वर्षों के लिए उद्बोधन कार्यालय अथवा श्री श्री मायेर बाड़ी (बाग बाजार, कलकत्ता) में था। किन्तु छुट्टी के दिनों में बेलुड़ मठ में रहना संभव होता। उस समय नियम था कि प्रतिदिन प्रातः काल साधु-ब्रह्मचारीगण उनको प्रणाम करने उनके कमरे में जाते तथा कुछ देर तक खड़े रहकर उनका कथामृत पान करते। उस समय वे अपने जीवन की जिन घटनाओं का वर्णन करते अथवा जो उपदेश आदि देते वह सब विभिन्न पुस्तकों में प्रकाशित हो चुके हैं। अतएव, उन्हें पुनः लिखना केवल 'पृष्ठ भरना' ही होगा। परन्तु स्वामी अपूर्वानन्दजी का आदेश हुआ है कि कुछ लिखना ही होगा, इसीसे कुछ लिखने की चेष्टा कर रहा हूँ।

सर्वप्रथम जब मैं बेलुड़ मठ आया था, तब मठ के कार्यकर्ताओं के निकट सुना था कि महापुरुष महाराज अत्यन्त कड़े स्वभाव के हैं तथा बहुत गंभीर हैं, अधिक बातचीत नहीं करते, दो-एक शब्द बोलकर ही सब कार्य निपटा देते हैं। अतः उनलोगों की बात सुनकर महापुरुष महाराज के प्रति मेरे मन में अच्छा-खासा भय था। जिस दिन उनके प्रथम दर्शन हुए थे, उस दिन मैं चुपचाप ही था; अन्य एक-दो लोग आना-जाना कर रहे थे या थोड़ी-बहुत बातचीत भी कर रहे थे। मैं उनकी ओर एकटक देखते हुए बैठा हुआ था तथा वे भी बीच-बीच में मेरी ओर देखते थे। उनका चेहरा अत्यन्त सुन्दर था, शरीर गौरवर्ण का था तथा दृष्टि में स्नेह का भाव झलक रहा था। अतः भय सम्पूर्ण रूप से दूर नहीं होने पर भी मैंने मन ही मन संकल्प कर लिया कि ये सौम्य शान्त संन्यासी ही मेरे जीवन के पथ-प्रदर्शक होंगे। इसके बाद जब मैं देवघर विद्यापीठ गया, तब वहाँ के संचालक ने मुझे श्री राम-कृष्णदेव के एक अन्य शिष्य के पास दीक्षा लेने का परामर्श दिया था, परन्तु मैंने कहा था, 'मैंने मन ही मन महापुरुष महाराज को गुरु रूप में वरण कर लिया है।' यह सुनकर वे और कुछ नहीं बोले। यह १९२३ ई० की बात है। इस समय रामकृष्ण मिशन में प्रवेश किये केवल सात-आठ महीने हुए थे। इसी बीच मेरी इच्छा हुई कि महापुरुष महाराज से मंत्रदीक्षा प्राप्त करूँगा एवं ब्रह्मचर्य व्रत गहण करूँगा। इसीलिए अपने मन की इच्छा व्यक्त करते हुए महापुरुष महाराज को चिट्ठी लिख दी। शीघ्र अनुकूल उत्तर भी आ गया, श्री श्री माँ की शुभ जन्म तिथि को ब्रह्मचर्य दीक्षा होगी एवं इसी बीच किसी दिन मंत्रदीक्षा भी होगी। उस समय नियम-कानून इतना कड़ा नहीं था। मठ के महाध्यक्ष महापुरुष जी एवं महासचिव सारदानन्दजी किसी भी समय ब्रह्मचर्य अथवा संन्यास दे देते थे। जब मैंने महापुरुष महाराज की चिट्ठी देवघर विद्यापीठ के अध्यक्ष को दिखायी तो वे थोड़ा विरक्त हुए। प्रथमतः उनको बिना बताये मैंने चिट्ठी क्यों लिखा,

द्वितीयतः इतनी जल्दी की क्या आवश्यकता थी। किन्तु महापुरुष जी का आदेश था, इसीलिए वे अस्वीकार नहीं कर सके। जो हो, सद्भावानन्दजी की अनुमति लेकर मैं बेलुड़ गया एवं श्री श्री माँ की जन्मतिथि (१९२३) को हमलोगों की ब्रह्मचर्य दीक्षा हो गयी। साथ में जो जो थे उनमें सब के नाम याद नहीं हैं, किन्तु स्वामी भूतेशानन्द एवं स्वामी अचिन्त्यानन्द (ब्रह्मलीन) ये दो लोग थे; इनके अतिरिक्त शायद और भी चार-पाँच लोग थे। उनमें भवानी चैतन्य नामक एक ब्रह्मचारी थे जो हृषिकेश में तपस्या करने गये तथा गंगा की तेज लहरों में बह गये। गोविन्द नामक एक और व्यक्ति थे जो घर लौट गये, किन्तु जीवनभर अविवाहित रहे; जाने दीजिए इन सब बातों को। श्री श्री माँ की जन्मतिथि के कुछ दिनों बाद ही महापुरुष जी की जन्म-तिथि मनायी गयी एवं उसी दिन मेरी मंत्रदीक्षा हुई। दीक्षा श्री रामकृष्णदेव के पुराने मंदिर में हुई थी। महापुरुष महाराज श्री श्री ठाकुर के सम्मुख उत्तराभिमुख बैठे थे तथा मैं उनके सामने दक्षिणाभिमुख बैठा था। मंत्रदीक्षा के बाद उन्होंने गंगाजल से फर्श पर बीजमंत्र लिखकर समझा दिया तथा कहा; "गुरुदक्षिणा दो।" मैं ये सब विधि-नियम कुछ नहीं जानता था। अतः साथ में कुछ भी नहीं ले गया था। परिस्थिति को भाँपकर उन्होंने कहा: "ठाकुरभंडार से हरीतकी या अन्य कोई फल ले आओ।" कौन सा फल लाया था, यह मुझे याद नहीं है; उस फल को ग्रहण करके उन्होंने मुझे नीचे जाने के लिए कहा था तथा उन्होंने श्री श्री ठाकुर के पास प्रार्थना की थी: "ठाकुर, इसका कल्याण करो।"

मेरा ब्रह्मचर्य नाम हुआ था सौम्यचैतन्य। इसी-लिए महापुरुष जी के दर्शन होते ही छान्दोग्य उपनिषद् की बात याद दिलाते हुए वे कहते - "सदेव सौम्य।"

* * *

२८ जनवरी १९२६ ई० (श्रीपंचमी तिथि) को विद्यापीठ के तीन नवनिर्मित भवनों का उद्घाटन करने के लिए महापुरुषजी देवघर आये थे। एक विस्तृत मैदान के एक भाग में तीन छोटे-छोटे घर बनाये गये थे। सामने दो एकमंजिला छात्रावास बनाये गये थे। उन दोनों के भीतर का निर्माण-कार्य समाप्त होने पर भी अर्थाभाव के कारण बाहरी प्लास्टर का कार्य बाकी था। इसके पीछे थोड़ी दूरी पर रसोई घर बनाया गया था। रसोई-घर के सामने बैठकर खाने के लिए चौड़ा बरामदा निर्मित हुआ था। इस मैदान के सम्मुखस्थ रास्ते के दूसरी ओर 'विपिन कुटीर' नामक मकान में महापुरुष जी को ठहराया गया था। उनके साथ आये हुए अन्य साधु भी वहाँ ठहरे थे।

मकान-मालिक ने बिना भाड़ा के कुछ दिनों तक मकान में रहने दिया था। हमलोग उस समय 'क्षमा विला' एवं 'वामा विला' नामक दो किराये के मकान में रहते थे। निर्दिष्ट समयानुसार नये भवनों का उद्घाटन हो गया एवं हमलोग किराये के मकान को छोड़कर वहाँ चले आये। इसके बाद भी महापुरुष जी कुछ दिनों तक देवघर में थे। मैं उस समय प्रधानाध्यापक था। महापुरुष जी के अवस्थान काल में आश्रम-संचालक सद्भावानन्द जी ने मुझे रसोईघर में कार्य करने के लिए कहा था, अतएव महापुरुष जी के पास जाने की फुर्सत नहीं थी। विद्यापीठ के मैदान के रास्ते के किनारे एक स्थान बहुत ऊँचा था, वहाँ से बैद्यनाथ शिवमन्दिर का चूड़ा दिखाई पड़ता था। तीर्थयात्री वहाँ आकर मन्दिर के चूड़ा दर्शन करते एवं साष्टांग प्रणाम करते। कई बार वे वहाँ रात्रियापन भी करते। यात्रियों के आने पर कई ढोल बजाने वाले भी वहाँ आ जाते एवं वे यात्रियों को घेर कर ढोल बजाते-बजाते नाचते। यात्रिगण भी उसमें सम्मिलित होते एवं थोड़ा बहुत ईनाम देते। उस समय भी विद्यापीठ का दोमंजिला मकान निर्मित नहीं हुआ था, अतएव रसोईघर के बरामदे पर से वह दृश्य दिखाई पड़ता था। स्थानीय भाषा में उस मैदान को 'दर्शनिया टाट' कहा जाता था। एकदिन रसोईघर के बरामदे में बैठकर मैं तरकारी काट रहा था, ऐसे समय मैंने देखा कि महापुरुष महाराज उस स्थान पर उप-

स्थित हुए हैं। उनको देखकर ढोल वालों ने उनको घेरकर ढोल बजाकर नाचना आरम्भ कर दिया एवं महापुरुष जी भी उसमें सम्मिलित हुए। इसके बाद उन्हें कुछ ईनाम देकर वे रसोईघर की ओर पैदल आये एवं मेरे पास आकर बोले : "यहाँ पर महाशक्ति का विकाश देखता हूँ। कालान्तर में यहाँ बहुत बड़े-बड़े कार्य होंगे।" इस वाणी का अर्थ उस समय भी नहीं समझा, अभी भी नहीं समझता हूँ। किन्तु उनकी कृपा से विद्यापीठ अभी एक पूर्णांग आवासीय उच्च विद्यालय में परिणत हो गया है एवं दिल्ली के शिक्षा विभाग ने इसे स्वीकृत किया है, जिसके फलस्वरूप कई प्रतिभावान छात्र यहाँ विद्याध्ययन करने आते हैं। शिक्षा स्तर भी खूब ऊँचा हुआ है एवं परीक्षाओं में छात्र विशेष सफलता प्राप्त करते हैं। सुना है, महापुरुष जी के संबंध में एक बार श्री रामकृष्ण ने कहा था, "इसका महाशक्ति का स्थान है जहाँ से सृष्टि का आरम्भ होता है।" और सुना है, मठ की प्रारंभिक अवस्था में वे इस शक्ति के विषय में बीच-बीच में चर्चा करते।.....

देवघर में एकदिन पूर्वाह्न में कार्य से फुरसत मिलने पर महापुरुष महाराज के पास जाकर देखा वे बिछावन पर बैठकर हाँफ रहे हैं एवं कुछ साधु पास में खड़े हैं। महापुरुष जी को हाँफने की बीमारी थी, देवघर की ठंढक में वह बहुत बढ़ गयी थी। उन्होंने कहा, "सारी रात बैठकर बिता दी है जब दर्द बहुत बढ़ गया था, तब इसपर (छाती पर हाथ रखकर) मन एकाग्र किया था एवं दर्द करना बन्द हो गया था।" तभी वहाँ पर उपस्थित ओंकारानन्द जी ने प्रश्न किया—वह क्या महाराज? उन्होंने उत्तर दिया "यह तो आत्मा।".....

उस समय विद्यापीठ के छात्र एक हस्तलिखित पत्रिका प्रकाशित करते थे। मैंने उसमें स्वामीजी के संबंध में एक लेख लिखा था। एक दिन मैंने सुना कि वह पत्रिका वे पढ़ने के लिए ले गये हैं। मैंने मन ही मन सोचा अब तो विपत्ति आयेगी; कच्चे हाथ का लेख--उसे पढ़कर वे विरक्त हो जायेंगे तथा शायद मुझे मठ से निकाल बाहर कर देंगे। किन्तु बाद में यह सुनकर आश्वस्त हुआ कि लेख को पढ़कर वे खुश हुए हैं।..

सन् १९२६ में १ से ८ अप्रैल तक बेलुड़ मठ में साधुओं एवं भक्तों का एक सम्मेलन हुआ था। उस सम्मेलन के सभापति थे महापुरुष जी। वृद्धावस्था के कारण खुले अधिवेशन में अंग्रेजी में भाषण देना संभव नहीं था। इसीलिए उनकी अनुमति से स्वामी निखिलानन्द ने अंग्रेजी भाषा में एक भाषण लिखा था एवं महापुरुष जी के निर्देशानुसार अमेरिका से आये हुए स्वामी परमानन्द ने खुले अधिवेशन में उस भाषण को पढ़ा था। पाठ समाप्त होने पर महापुरुष जी ने मंतव्य किया : वाह! बहुत अच्छा लिखा है! यह बात कई लोगों ने सुनी तथा मन ही मन सोचा महापुरुषजी कितने सरल हैं एवं प्रचलित रीति के अनुसार मिथ्या का अवलम्बन करके अपना गौरव बढ़ाने के कितने विरत हैं!

सन् १९२७ में पूज्यपाद स्वामी सारदानन्द जी के देहत्याग के बाद महापुरुष जी का भी शरीर अस्वस्थ हो गया, अतएव वायु परिवर्तन के लिए वे मधुपुर गये थे एवं 'सेठ विला' में ठहरे थे। इसी बीच मेरे जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन हो चुका है। सम्मेलन के कुछ ही समय बाद देवघर विद्यापीठ के अध्यक्ष स्वामी सद्भावानन्द जी यक्ष्मारोग से आक्रान्त हो गये एवं (मठ-मिशन के) संचालकों ने मुझे ही अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया, यद्यपि मैं तभी भी ब्रह्मचारी सौम्य चैतन्य ही था एवं करीब तीन ही वर्ष पहले संघ में योगदान किया था। रुपया-पैसा संग्रह करने की क्षमता मुझ में एकदम नहीं थी एवं अभी भी नहीं है। स्वतः लब्ध दान से ही मुझे काम चलाना होता, जबकि विद्यापीठ के उन प्रारंभिक दिनों में प्रचुर अर्थ की आवश्यकता थी। स्वामी सद्भावानन्द जी के समय दो काँग्रेसी स्वामी सत्यानन्द एवं ज्ञान ने विद्यापीठ के कार्य में योग दिया था। सत्यानन्द अधिक दिनों तक नहीं रहे, बाद में उन्होंने नेताजी के दल में योगदान किया था एवं

बैंकॉक में देहत्याग किया। ज्ञानदा (हमलोग उन्हें इसी नाम से पुकारते थे) कुछ दिनों तक विद्यापीठ में रहनेके बाद स्वामी स्वात्मानन्द के नाम से परिचित हुए। बेलुड में रहते समय यह विदित हुआ कि वे राजद्रोह के कार्य में सक्रियरूप से संलग्न हैं इसीलिए उनको संघ त्याग करना पड़ा। जाने दीजिए, यह सब बाद की बात है। आलोच्य काल में ज्ञानदा रुपया-पैसा संग्रह करने के विषय में मेरे परामर्श दाता थे। उनके साथ धन संग्रह करने के लिए मैं बीच बीच में साइकिल से देवघर में घूमा करता था किन्तु कोई विशेष लाभ नहीं हुआ था। महापुरुष जी इस बार मधुपुर आये हैं, यह सुनकर ज्ञानदा ने कहा—चलो मधुपुर, महापुरुष जी वहाँ हैं, अतएव धनसंग्रह करने में सुविधा होगी। किन्तु साइकिल से जाना होगा, वैसा नहीं करने पर शहर में घूमा-फेरी कैसे करेंगे? मुझे ज्ञानदा की बात अच्छी लगी; महापुरुष जी के दर्शन होंगे एवं रुपया-पैसा पाने की भी संभावना है। देवघर से मधुपुर की दूरी रेल-मार्ग से जाने पर करीब बाइस मील एवं पैदलमार्ग से जाने पर उन्नसी-बीस मील। कोई सड़क नहीं थी। बीच में क्षीणस्रोत वाली एक चौड़ी नदी को पार करना होता। अतएव, कभी साइकिल पर सवार होकर तो कभी साइकिल को कंधों पर उठाकर हम दोनों दोपहर में भोजन के बहुत पहले ही 'सेठ विला' में उपस्थित हुए। सर्वप्रथम महापुरुष जी के सेक्रेटरी स्वामी गंगेशानन्द से भेंट हुई। हमलोगों को देखकर उन्होंने कहा—"महापुरुष जी दूसरे के यहाँ अतिथि रूप में हैं; तुमलोग यदि इस प्रकार भीड़ लगाओगे तो वे एवं गृहस्वामी दोनों ही क्षुब्ध होंगे एवं धनसंग्रह करना नहीं होगा; क्योंकि उससे महापुरुष जी की बदनामी होगी। अतएव हमलोगों ने ठीक किया कि महापुरुष जी के दर्शन एवं प्रणाम करके ही देवघर लौट जायेंगे। दोपहर का भोजन बाजार से कुछ खरीदकर खा लेने से ही हो जायगा; किन्तु हमलोग जब महापुरुष जी के दर्शन करने गये, तो उन्होंने हमलोगों को सादर ग्रहण किया एवं बिना खाये लौट जायेंगे सुनकर बोले "नहीं, यहीं पर दोपहर का भोजन करना।" गृहस्वामी भी वहाँ उपस्थित थे, उन्होंने भी इसमें सहमति दी।

इसी बीच देवघर के अन्य साधु ब्रह्मचारी भी रेल गाड़ी से सेठ विला पहुँच गये। बातों ही में अर्थ संग्रह का प्रश्न उठने पर महापुरुष जी बोले—"जो जो चाहता है ठाकुर कृपा करके उसको वही देते हैं, तुमलोग विद्यापीठ के लिए रुपये चाहते हो, वह भी हो जायगा।"

उस दिन भोजन अच्छा ही हुआ था, भोजन के बाद मैं और ज्ञानदा महापुरुष जी को प्रणाम करके साइकिल से देवघर लौट गये। अन्य लोग ट्रेन से लौटे, अर्थ संग्रह कुछ भी नहीं हुआ।.....

मधुपुर से महापुरुष जी काशीधाम चले गये एवं अद्वैत आश्रम में निवास करने लगे। उस समय मठ में यह बात जोरों से चल रही थी कि ब्रह्मचर्य एवं सन्यास ग्रहण करने का समय निर्धारित कर देना होगा। इसीलिए कहीं मेरा आवेदन अस्वीकृत न हो इसी भय से इतने दिनों तक संन्यास के लिए आवेदन नहीं किया था, अचानक काशी से तार आया कि ब्रह्मचर्य के बाद जिन लोगों के तीन वर्ष हो गये हैं वे लोग चले आएँ, महापुरुष जी स्वामीजी की जन्मतिथि को संन्यास देंगे। स्वामी सत्स्वरूपानन्द, स्वामी गौरीश्वरानन्द और मुझमें उस प्रकार की योग्यता थी। हम तीनों शीघ्र टिकट खरीद-कर देवघर से काशीधाम पहुँच गये। वहाँ भावी संन्यास के साथी रूप में पाया स्वामी शिवस्वरूपानन्द (मति महाराज) को एवं अन्य दो-तीन लोगों को जिनके नाम अभी याद नहीं हैं। संन्यास के पहले आत्मश्राद्ध करना पड़ता है। किन्तु मुश्किल हुआ कि पुरोहित ही नहीं मिल रहे थे; सब सुनकर महापुरुष जी ने कहा, —तुमलोग भी वैसे ही हो, पिण्ड बनाकर दशाश्वमेध घाट पर गंगा में विसर्जन कर देना; यह कहकर, पिण्ड दान के समय जो मुद्रा दिखायी जाती है, उसे भी दिखाकर कहा, यह दिखा देना। हमलोगों को वैसा नहीं करना पड़ा क्योंकि अंत में पुरोहित मिल गये। यथासमय ब्राह्म-मुहूर्त में सन्यास दीक्षा भी हो गयी। विरजा होम के

आचार्य थे स्वामी जगदानन्दजी एवं संन्यास का मंत्र महापुरुष जी ने स्वयं सुनाया। संन्यास के बाद गंगा-स्नान करके एवं माँ अन्नपूर्णा तथा बाबा विश्वनाथ के दर्शन करके हमलोगों ने महापुरुष जी को साष्टांग प्रणाम किया। संन्यास के बाद भिक्षाटन करना पड़ता है। पहली भिक्षा महापुरुष जी ने स्वयं दी। एक रुपया देकर उन्होंने कहा—जलेबी खरीदकर खा लेना। हमलोगों ने अद्वैत आश्रम के खुले मैदान में बैठकर वही किया था। उस समय भी वहाँ पर मन्दिर नहीं बना था। दोपहर की भिक्षा चाची के घर मिली थी। एक उच्चपदस्थ पुलिस कर्मचारी काशी में रहते थे; इस परिवार के सभी लोग ठाकुर के भक्त थे एवं उस सज्जन की स्त्री को सभी श्रद्धा के साथ चाची कहकर पुकारते थे। देवघर के बहुत सारे कार्य थे, अतएव संन्यास के बाद यथाशीघ्र हमलोग देवघर लौट आये।.....

मैं यह नहीं कहना चाहता हूँ कि सभी समय मैंने उनका स्नेह पाया है एवं कभी भी वे मुझसे नाराज नहीं हुए। एक बार बेलुड़ मठ में था, उन दिनों देवघर विद्यापीठ में सभी प्रकार के अभाव थे—रुपया-पैसा छात्र, शिक्षक इत्यादि। उस समय नलिनी महाराज नामक एक साधु ने (जिनको सभी नलिन मास्टर कहते थे) कहा कि अमुक थियेटर के संचालक अपने परिवार के एक लड़के को देवघर में भर्ती कराने के लिए सोच रहे हैं, तुम यदि उनके साथ मुलाकात करो तो अच्छा होगा, मैं तुमको साथ में ले जाऊँगा। इसीलिए एक दिन उनके साथ थियेटर के संचालक के पास गया। बेंचों की कई पंक्तियों को पारकर उनके ऑफिस में उपस्थित हुआ। संचालक महोदय वहाँ नहीं थे एवं पता चला कि उनके घर जाने पर भी शायद मुलाकात नहीं होगी, इसीलिए मठ लौट आया एवं महापुरुष महाराज को सब कुछ सुनाया। सुनते ही वे बहुत गंभीर हो गये। हाँ, ना— कुछ नहीं बोले। मैंने इसी से समझ लिया कि वह काम करना ठीक नहीं हुआ, अतएव उस साधु का संग छोड़ दिया। बाद में वे मठ छोड़कर चले गये।

सन् १९२९ में जब मैं बेलुड़ मठ में था, तब उद्बोधन कार्यालय (मायेर बाड़ी) में एक बड़े परिवर्तन की चेष्टा चल रही थी। कई कारणों से इस संबंध में अधिकांशतः महापुरुष महाराज को जानकारी नहीं दी जाती थी। एक दिन मठ के संचालकों ने मुझे आदेश किया—अमुक समय में अपराह्न में गंगा घाट पर नाव खड़ी रहेगी एवं तुम अपने सामान आदि लेकर अन्य कई साधुओं के साथ उद्बोधन जाना। वहाँ स्वामी विरजानन्द अध्यक्ष होंगे, आत्मबोधानन्द (सत्येन महाराज) मैनेजर होने जा रहे हैं, वे कुछ दिन रहकर तुमको कार्य सिखा देंगे एवं इसके बाद तुम्हें ही मैनेजर होना पड़ेगा। पहले ही मुझे संकेत मिला था कि महापुरुष महाराज को बिना बताए यह व्यवस्था की गयी है, किन्तु गुरुदेव को बिना बताए उन्हें प्रणाम किये बिना इस कार्य की ओर अग्रसर होना अनुचित होगा, यही सोच कर मैं उनके कमरे में गया तथा प्रणाम करके सब कुछ कह सुनाया; वे सुनकर बहुत गंभीर एवं चिन्तामग्न हो गये, किन्तु कुछ बोले नहीं। अपरिहार्यतः मैं नाव में जाकर चढ़ गया। इसके बाद की सभी घटनाएँ रामकृष्ण मठ एवं मिशन के इतिहास में लिखी हुई हैं। किन्तु मुझे वहाँ अधिक दिनों तक रहना नहीं पड़ा; कुछ दिनों के बाद सत्येन महाराज मैनेजर के रूप में कार्य करने के लिए राजी हो गये एवं मैं करीब डेढ़ वर्षों तक उद्बोधन में कार्य करके देवघर लौट गया।...

और एक दुःखद घटना है। माहापुरुषजी उस समय पक्षाघात रोग से आक्रान्त होकर बिछावन पर लेटे रहते थे। वे न चल फिर सकते थे और न बोल सकते थे। मैं देवघर से पका हुआ एक बड़ा पपीता श्री श्री ठाकुर को देने के लिए ले आया था। उसको देखकर, महापुरुष जी के एक सेवक ने कहा—'उन्हें दिखा दो' जब मैं उन्हें यह दिखाने गया उनका मुखमण्डल वेदना एवं विरक्ति से भर उठा। वहाँ कोई उपस्थित नहीं था जो मुझे समझा सकते थे कि महापुरुषजी क्या चाहते हैं। बाद में मेरे मन में हुआ कि शायद वे यह कहना चाहते थे कि वह ठाकुर को चढ़ाओ मेरे पास क्यों लाये

हो ? क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा था कि किसी के कुछ लाने पर वे पूछते क्या ठाकुर-मन्दिर में गया था ? एवं ठाकुर को क्या कुछ दिया है ? उस वेदनापूर्ण मुखमण्डल की स्मृति आज भी मेरे मन में है एवं आज भी पीड़ा देती है कि मैं इतना मूर्ख हूँ कि उनका भाव नहीं समझ पाया । ....

विरक्ति देकर संस्मरण समाप्त नहीं करके कुछ सम्बद्ध घटनाओं का उल्लेख कर दूँ । एक बार लालगढ़ के राजा योगेन्द्रनाथ साहस राय ने जब एक ... कीमती शाल महापुरुष जी को अर्पित किया तब वे बोल उठे, इसके बाद एक काले रंग की किनारवाली धोती ले आओ एवं एक छड़ी दो, मैं छड़ी घुमाघुमाकर एवं सिसकारी देते हुए घूमफिर आऊँ । ....

एक दिन सुबह में हमलोग कुछ साधु ब्रह्मचारी महापुरुषजी के सामने खड़े थे, उसी समय एक साधु ने प्रणाम करके कहा, महाराज मैं तपस्या करने हृषिकेश जा रहा हूँ । तब महापुरुष जी ने कहा—'एक साधु तपस्या करने जा रहा था । उसको किसी दूसरे साधु ने पूछा—'स्वामीजी, आप कहाँ जा रहे हैं ?' स्वामीजी ने जोर से उत्तर दिया—'मैं हृषिकेश जा रहा हूँ ।' उसके बाद जब वे हृषिकेश से लौटे, तब और एक साधु ने उनको पूछा, 'स्वामीजी, आप कहाँ से आ रहे हैं ?' स्वामीजी ने उस समय धीमे स्वर में कहा—'आ-रे-भा-ई-हृ-षि-के-श से ।' इतने दिनों तक सत्र की रोटी खा खाकर एवं मलेरिया रोग से कष्ट पाकर, स्वामीजी अस्थिचर्मसार हो गया है ।" ....

वे ऊटी से हाल ही में लौटे थे एवं मठ भवन की निचली मंजिल के गंगा की ओर वाले पूर्वी बरामदे में बैठकर बातचीत कर रहे थे । सामने कुछ साधु एवं भक्त खड़े थे । ऊटी में दीर्घकाल तक रहने के कारण उनके स्वास्थ्य में उन्नति हुई थी एवं उनके शरीर का रंग भी उज्ज्वल हो गया था, जिससे वे सुन्दर दिखाई दे रहे थे । वे प्रसन्नता पूर्वक ऊटी के संबंध में बोलते जा रहे थे—वह स्थान कितना मनोरम है, उनकी कैसी अनुभूति हुई थी, भक्तलोग कितने सज्जन हैं इत्यादि । सभी बातें अच्छी लगी थीं एवं मन आनन्द से भर गया था किन्तु एक भी बात याद नहीं रख सका हूँ ।

महापुरुष महाराज अति वृद्ध हो चुके हैं । अपने कमरे में ही सदा रहते हैं । एक दिन सबेरे काली पूजा का प्रसाद एक बड़ी थाली में सजाकर उनके सामने रखने पर उन्होंने कहा—इतना कैसे खाऊँगा ? माँ तो दृष्टिभोग करती हैं किन्तु मुझे तो खाकर हजम करना होगा । फिर भी प्रसाद के प्रति श्रद्धा व्यक्त कर उन्होंने थोड़ा ग्रहण किया ।

(प्रस्तुत लेख 'श्री महापुरुष महाराजेर स्मृति कथा' नामक प्रबन्ध का हिन्दी रूपान्तर है । यह रूपान्तर 'शिवानन्द स्मृति संग्रह,' द्वितीय खण्ड, द्वितीय संस्करण से साभार किया गया है—स० ।)

जब 'तुम' न रहोगे, तभी 'तुम' सत्य-सत्य रहोगे । तभी तुम्हारा यथार्थ जीवन शुरू होगा जब 'तुम्हारा' मरण होगा । "मैं मरते ही मिट गया जंजाल ।"

—स्वामी विरजानन्द

श्रीरामकृष्ण के अन्यान्य लीला-पार्षदों के संग में

स्वामी गम्भीरानन्द

श्री रामकृष्णदेव के जिन अन्यान्य लीलापार्षदों के दर्शन उन्होंने (स्वामी गंभीरानन्द ने) किये हैं उनमें हैं— स्वामी सारदानन्द जी, स्वामी अखण्डानन्द जी, स्वामी सुबोधानन्द जी, स्वामी विज्ञानान्द जी एवं स्वामी अभेदानन्द जी। किन्तु उनलोगों से कोई प्रश्नादि करने की इच्छा उनके मन में कभी उदित नहीं हुई। उन्हें केवल प्रणाम करके चले आते थे। किन्तु खोका महाराज (स्वामी सुबोधानन्द जी) के साथ उनकी बहुत घनिष्ठता थी। खोका महाराज बहुत ही मिलनसार थे। वे सभी साधु-ब्रह्मचारियों के साथ कभी बालकवत्, कभी भ्रातृवत् तो कभी पितृवत् व्यवहार करते थे। सौम्य चैतन्य (बाद में स्वामी गंभीरानन्द) को कभी ऐसा नहीं लगा कि वे रामकृष्णदेव के शिष्य हैं, इसीलिए उन्हें विशेष सम्मान देना चाहिए। स्वामीजी के कमरे के नीचे बरामदे पर गप-शप करने के लिए जमघट होता था। वहाँ कई पुराने साधु भी सम्मिलित होते थे। कई प्रकार की चर्चाएँ होती थीं। यहाँ सौम्य चैतन्य ने बहु शिक्षा प्राप्त की थी, मठ के पुराने इतिहास तथा स्वामीजी के जीवन की घटनावलि आदि को जाना था।

एकबार यक्ष्मारोग से आक्रान्त होकर खोका महाराज उद्बोधन गये थे। गंभीरानन्द जी वहाँ उपस्थित थे। खोका महाराज को दोमंजिले पर ले जाना होगा। गंभीरानन्द जी अकेले उन्हें गोदी में उठाकर ऊपर लेकर चले गये। इस समय खोका महाराज ने गंभीरानन्दजी के मस्तक पर हाथ फेरकर बहुत आशीर्वाद दिया था।

एक बार स्वामी अखंडानन्द जी ने गंभीरानन्द जी को न्यासी परिषद् की बैठक में उपस्थित रहने के लिए कहा। यह सुनकर वे घबड़ा गये। उस बैठक के सभापति थे स्वामी अखंडानन्दजी, उन्होंने उन्हें सोनार गाँव (बंगला देश) में भाषण देने का आदेश दिया। गंभीरानन्द जी ने कहा- 'मैंने कभी भाषण नहीं दिया है।" अखंडानन्द जी ने उत्तर दिया : "तुमको जाकर भाषण करना ही होगा।" परन्तु गंभीरानन्द जी के साथ एक वयस्क साधु गये थे। सोनार ग्राम में उन्होंने मात्र ५/१० मिनटों तक भाषण दिया था। यही उनके जीवन का प्रथम भाषण था।

सन् १९३७ में गंभीरानन्द जी इलाहाबाद अर्धकुंभ में गये थे। कुछ साधुओं को साथ लेकर वे विज्ञान महाराज (स्वामी विज्ञानानन्द जी) के दर्शन करने मुट्ठीगंज आश्रम आये। विज्ञान महाराज ने पूछा—"तुमलोग कौन हो ?" आगन्तुकों ने उत्तर दिया; "हमलोग रामकृष्ण मठ के साधु हैं।" विज्ञान महाराज ने पुनः पूछा: "कहाँ से आये हो ?" उत्तर मिला : "मेला भूमि से आये हैं।" इसपर विज्ञान महाराज ने कहा, "अच्छा, तुमलोग वहीं लौट जाओ।" उस समय विज्ञान महाराज अन्य भाव में मग्न थे। किन्तु एक-दो दिन बाद वे मेला भूमि पर (त्रिवेणी संगम पर) आये एवं उनलोगों के साथ मिलकर उन्हें बहुत ही आनन्द प्रदान किया। उस समय उनके साथ पैदल मेला देखने का सौभाग्य गंभीरानन्द जी को प्राप्त हुआ था।

जब विज्ञान महाराज बेलुड़ मठ आते थे, तब वे उनका पुण्य संग करते थे। एक बार एक सज्जन ने काफी परिमाण में फल, दही, मिठाई आदि विज्ञान महाराज को दिया। गंभीरानन्द जी ने सोचा कि आज

प्रसाद अच्छा ही होगा। किन्तु हाय ! विज्ञान महाराज ने सब कुछ गंगा गर्भ में विसर्जन कर दिया। बाद में पता चला कि वे सज्जन दुश्चरित्र थे। यह दृश्य सदा के लिए गंभीरानन्द जी के मन में अंकित हो गया था कि आध्यात्मिक साधकों को पवित्र अन्न ग्रहण करना चाहिए।

एक बार बेलुड़ मठ में श्रीरामकृष्ण-जन्मोत्सव के समय एक अद्भुत घटना घटी थी, उसका वर्णन करते हुए गंभीरानन्द जी ने कहा था, "हमने उन्हें (विज्ञान महाराज को) नाना प्रकार से नाना स्थानों पर देखा है। सब समय उन्हें समझना मुश्किल था। यदि उनके साथ घनिष्ठ रूप से मेलजोल होता, तब कहीं यह बात समझ में आती कि वे कैसे शक्तिमान पुरुष थे। एक घटना आज मुझे अचानक याद आ गयी है। उस समय बेलुड़ मठ में श्री रामकृष्ण-जन्मोत्सव हो रहा था। वर्तमान में जो मुख्य प्रवेश पथ एवं सड़क है वह उस समय नहीं बना था। केवल दक्षिणी प्रवेश पथ था। मेरी ड्यूटी उसी दक्षिणी प्रवेश पथ (gate) पर थी। प्रातःकाल उत्सव शुरू होने के पहले हम सभी स्वामी विज्ञानानन्द महाराज के कमरे में जाकर इन्हें प्रणाम कर खड़े हैं। तभी उस प्रवेश पथ की ओर अंगुली दिखाकर उन्होंने कहा—"आज वहाँ एक बड़ी घटना होगी !" मैं तो घबड़ा गया। न जाने कौन से फसाद की बात है ! मेरी वहाँ ड्यूटी है, पता नहीं क्या होगा ! जो हो, देखा जायगा। अचानक दस बजे के समय समागत भक्तों के बीच कुछ हुआ। पूरे स्थान पर खलबली एवं मारपीट शुरू हो गयी। भाग्यवश कैप्टन मस्ता नामक एक युवक भक्त वहाँ थे (संभवतः आस्ट्रेलिया निवासी, मुझे अभी ठीक-ठीक याद नहीं आ रहा है), उन्होंने सब हंगामे को शान्त कर दिया। उस समय मैंने समझा कि महापुरुषों की वाणी, भविष्यत्-दृष्टि इसी तरह फलीभूत होती है। मुझे उस दिन से दृढ़ विश्वास हो गया कि वास्तव में इस प्रकार की अलौकिक दृष्टि एवं अलौकिक घटना संसार में है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। हमलोगों के जीवन में नहीं भी घट सकता है, किन्तु उनके मुख से सुना है या उनके पास से प्रत्यक्ष प्रमाण पाया है। अतएव उनलोगों का जीवन किस प्रकार का था, सामान्य दो-एक घटनाओं से हमलोग कल्पना कर सकते है, यद्यपि सम्पूर्ण अनुभूति नहीं होगी। कल्पना कर सकते हैं कि वे कितने महान थे—कितने बड़े थे, अपने साथ कितनी शक्ति, भाव-भक्ति आदि लेकर आये थे एवं चुपचाप इस संसार में उसे वितरित कर गये हैं।"[१]

१. प्रत्यक्षदर्शीर स्मृतिपटे स्वामी विज्ञानानन्द, प्रथम संस्करण, पृ०. २७२-२७४.

सिन्धु तरंग

तद् विद्धि परिप्रश्नेन

—श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्द जी महाराज

(क) दीक्षा

प्रश्न—शिष्य के जीवन में दीक्षा का क्या अर्थ एवं महत्व है ?

उत्तर—कई लोगों ने इस प्रकार के प्रश्न किये हैं। दीक्षा क्या है ? हर नयी शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी न किसी प्रकार की दीक्षा का निर्देश शास्त्रों एवं अन्य ग्रन्थों में है। जैसे किसी बच्चे को शुरू-शुरू में स्लेट पर लिखने में सहायता करने के लिए शिक्षक पेंसिल सहित उसका हाथ पकड़कर लिखाते हैं। यह भी एक प्रकार की दीक्षा ही है, जिसमें वर्णों का ज्ञान दिया जाता है। इसी तरह इस्लाम, बौद्ध आदि धर्मों में दीक्षा के विभिन्न प्रकार हैं। हिन्दू धर्म में गायत्री-मंत्र

ग्रहण एवं यज्ञोपवीत संस्कार की दीक्षा का एक भेद है। यज्ञ अथवा बलि देने के पूर्व भी दीक्षा का निर्देश है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार की दीक्षाएँ हैं। परन्तु उन सभी प्रकार की दीक्षाओं से यहाँ हमारा कोई सम्बन्ध नहीं हैं। जो लोग हमसे दीक्षित होते हैं, उनके मन में एक विशिष्ट प्रकार की दीक्षा की धारणा होती है। वे जानना चाहते हैं कि वह क्या है? स्वामी सारदानन्द जी द्वारा लिखित ग्रन्थ 'श्री रामकृष्ण लीला प्रसंग' में हम तीन प्रकार की दीक्षाओं का उल्लेख पाते हैं। एक है—आणवी अथवा मंत्र-दीक्षा अर्थात् मन्त्र द्वारा दीक्षा देना। उस महाग्रन्थ के अनुसार, श्रीरामकृष्ण ने कम से कम तीन लोगों को मंत्र-दीक्षा दी थी। वे हैं श्री वैकुण्ठ नाथ सान्याल, स्वामी निरंजनानन्द एवं तेज नारायण। यह है मंत्र-दीक्षा, मन्त्र द्वारा दी गयी दीक्षा। हम यह भी जानते हैं कि स्वामी विवेकानन्द ने काशीपुर में श्रीरामकृष्ण से रामनाम मंत्र प्राप्त किया था। उसके बाद वे काशीपुर उद्यान भवन के चारों ओर सारी रात कंधे पर एक डंडा रखकर चक्कर लगाते रहे मानो वे अन्य लोगों से श्रीरामकृष्ण की रक्षा कर रहे हों। 'श्री रामकृष्ण पुंथि' के रचयिता श्री अक्षय कुमार सेन कहते हैं कि कल्पतरु दिवस के अवसर पर (१ जनवरी, १८८६) उन्हें श्रीरामकृष्णदेव से एक मंत्र मिला था। इसके अलावे, हम जानते हैं कि श्रीरामकृष्ण ने कुछ लोगों की जिह्वा पर मंत्र लिख दिया था। अतः उस प्रकार से उन्होंने मंत्र-दीक्षा दी थी।

फिर शक्ति-दीक्षा भी है। इसका अर्थ है एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के अन्दर शक्ति-संचार करना। श्रीरामकृष्ण ने अपनी शक्ति का अपने कुछ शिष्यों में संचार किया था। एक विशिष्ट घटना तो आपलोगों को ज्ञात ही है। महा-समाधि के दो दिन पहले उन्होंने अपनी सारी शक्ति स्वामी विवेकानन्द (उस समय नरेन्द्रनाथ) के अन्दर संचारित कर दी थी एवं कहा था, "तुम्हें सब कुछ देने के बाद मैं फकीर हो गया हूँ।" वैसे ही जब आप 'वचनामृत' एवं 'लीला प्रसंग' पढ़ेंगे तब देखेंगे कि श्री रामकृष्ण बातचीत के दौरान स्पर्श द्वारा कई लोगों के अन्दर अपनी शक्ति का संचार करके उन्हें शान्त कर दिया करते थे। इसके अतिरिक्त यह सर्वविदित है कि १ जनवरी १८८६ के दिन उनके स्पर्शमात्र से कइयों को आध्यात्मिक भावावेश हुआ था एवं कुछ लोगों को अपने इष्टदेव के दर्शन-प्राप्त हुए थे। इस तरह उन्होंने अनेक व्यक्तियों में शक्ति-संचार किया था। वह शक्ति-दीक्षा कहलाती है।

तृतीय प्रकार की दीक्षा शाम्भवी-दीक्षा होती है, जहाँ गुरु एवं शिष्य दोनों में कोई भी नहीं जानते हैं कि क्या हो रहा है, परन्तु दोनों के अनजाने ही गुरु की शक्ति शिष्य के अंदर संचारित हो जाती है। उदाहरणार्थ, बहुत लोगों ने, जिन्होंने श्रीरामकृष्णदेव के दर्शनमात्र किये थे, उन्हें अपने जीवन में गुरु रूप में वरण किया था एवं उन्हें विश्वास हो गया था कि उनके जीवन का उद्देश्य पूर्ण हो गया है। अतः, निश्चित रूप से, कई लोगों के जीवन में ऐसा घटित हुआ था, जो श्रीरामकृष्णदेव के सान्निध्य में आये थे, जिन्होंने उन्हें दूर से ही देखा था या उनका स्पर्श-मात्र किया था अथवा संयोगवश उनसे थोड़ी-बहुत बातचीत की थी।

इन तीन प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन श्रीरामकृष्ण-लीला प्रसंग में है। परन्तु यहाँ इन तीनों से हमारा सम्बन्ध नहीं है। हमारा सम्बन्ध इच्छुक व्यक्तियों को हमारे द्वारा दी जानेवाली मंत्र-दीक्षा से है। इसका क्या अर्थ है? हाल ही में, कुछ ही दिनों पहले, एक लड़की मेरे पास आकर बोली, "दीक्षा के दौरान मुझे कोई नया अन्तः स्फुरण (inspiration) नहीं हुआ।" मैंने कहा, "देखो, यह (दीक्षा) एक पारस्परिक प्रक्रिया है। नयी प्रेरणा प्राप्त करने के लिए तुम्हारी तरफ से प्रस्तुति चाहिए।" फिर शास्त्रों का कहना है कि गुरु को कुछ गुण-विशेष से विभूषित होना चाहिए। इसके बिना कोई गुरु नहीं हो सकता है।

"श्रोत्रियो ब्रह्मनिष्ठः" — गुरु को श्रोत्रिय एवं ब्रह्म-

निष्ठ होना चाहिए। श्रोत्रिय ऐसे लोगों को कहा जाता है जिनका व्यवहार वेदों एवं शास्त्रों के अनुकूल हो तथा सभी प्रकार की निन्दाओं से परे हो। निश्चित रूप से उन्हें सत्यवादी, निष्ठावान एवं ईश्वरप्रेमी आदि होना चाहिए। फिर उन्हें ब्रह्मनिष्ठ, ईश्वर अथवा ब्रह्म के चिन्तन में सदा मग्न होना चाहिए। ये गुरु के आवश्यक गुण हैं। 'विवेक चूड़ामणि' एवं अन्य ग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि गुरु को 'अवृजिनो अकामहत' भी होना चाहिए। 'अवृजिन' शब्द के दो अर्थ हैं: निष्पाप एवं निष्कपट अर्थात् जो समस्त कुटिलताओं से रहित हों एवं अपने शिष्यों को धोखा न दे रहे हों। उन्हें 'अकामहत' अर्थात् धन-सम्पत्ति आदि वस्तुओं की प्राप्ति की कामना-वासना से रहित भी होना चाहिए। गुरु के लिए इन गुणों की आवश्यकता है।

सच्चा शिष्य भी होने के लिए कई गुणों की आवश्यकता पड़ती है। दीक्षा के ही समय अन्तःस्फुरण प्राप्त करने के लिए एक पृष्ठभूमि (back-ground) की आवश्यकता है। वह पृष्ठभूमि क्या है? वेदान्त-सूत्र-भाष्य में श्री शंकराचार्य ने लिखा है कि शिष्य के अन्दर षट्सम्पति रहनी चाहिए। वे षट्सम्पत्तियाँ क्या हैं? वे हैं—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा एवं समाधान। शिष्य को अपने शरीर-मन पर नियंत्रण रहना चाहिए एवं सांसारिकता से अनासक्ति रहनी चाहिए। वह पूरी तरह संन्यासी की तरह नहीं होगा, परन्तु उसका मन सांसारिक वस्तुओं में पूर्णतः लिप्त नहीं होना चाहिए। उसे संसार से थोड़ा अनासक्त रहना चाहिए। अन्यथा वह ईश्वर की खोज कैसे करेगा? सोलहों आना मन यदि संसार में लगा रहे तो ईश्वर-चिन्तन अथवा ईश्वरानुसरण करने के लिए कुछ नहीं बचेगा। अतएव थोड़ी अनासक्ति अवश्य रहनी चाहिए। फिर तितिक्षा चाहिए: 'सहनं सर्व-दुःखानां अप्रतिकार पूर्वकम्'। सहिष्णुता ही तितिक्षा है। इसका क्या अर्थ है? यह जैसे को तैसा नहीं है, बल्कि सताये जाने अथवा किसी चीज से वंचित कियेजाने पर भी चुपचाप रहना ही तितिक्षा है। तितिक्षु व्यक्ति यह जानता है कि उसे कुछ चीजों से वंचित किया जा रहा है, फिर भी वह कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता है। इस प्रकार की मानसिक-प्रकृति को तितिक्षा कहते हैं। अविचलित रहकर सभी प्रकार के दुःखों को सहन करना भी इसके अन्तर्गत है। यही तितिक्षा है। फिर श्रद्धा चाहिए—विश्वास, गुरु के ऊपर विश्वास एवं शास्त्रों में विश्वास। और चाहिए समाधान—मानसिक एकाग्रता। गुरु कुछ सिखा रहे हैं और शिष्य का मन इधर-उधर भटक रहा है। इस प्रकार मन का भटकना गुरु से शिष्य के अन्दर मंत्र-संचार में सहायक नहीं होगा। अतएव, शिष्य को इन गुणों से युक्त होना ही चाहिए। फिर, जैसा कि श्री रामकृष्ण देव ने कहा है नित्य-अनित्य, सही-गलत, अच्छा-बुरा, इत्यादि के बीच विचार चाहिए। 'नित्यानित्य वस्तु-विवेक'। इसके बाद 'इहामुत्रफलभोग विराग'—इहलोक एवं परलोक के समस्त सुख-भोगों से वैराग्य चाहिए। और सबसे अंत में चाहिए मुमुक्षत्व—मुक्ति के लिए व्याकुलता। मुक्त होने के लिए शिष्य के अन्दर छटपटाहट होनी चाहिए। मुमुक्षत्व ही धर्म को सही रूप प्रदान करता है। अन्य सभी गुण नैतिकता के दायरे में ही हैं, किन्तु मुमुक्षत्व सच्चे धर्म को अभिव्यक्त करता है। यह इसे आध्यात्मिकता में परिवर्तित कर देता है। इन गुणों से युक्त होकर शिष्य जब योग्य गुरु के पास जाता है तभी वास्तविक दीक्षा होती है और शिष्य वास्तविक अन्तः स्फुरण प्राप्त करता है, उच्च-स्तर पर आरूढ़ हो जाता है। परन्तु, यदि गुरु उतने योग्य न हों एवं शिष्य भी उस प्रकार तैयार नहीं हो, तो भी दीक्षा हो सकती है। कैसे? विभिन्न शिक्षकों के द्वारा छात्रों को भिन्न-भिन्न कक्षाओं में पढ़ाया जाता है। क ख ग पढ़ाने के लिए प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त व्यक्ति की आवश्यकता नहीं है; एक साधारण व्यक्ति भी उन्हें अक्षर ज्ञान दे सकता है। उसी प्रकार छठी या सातवीं कक्षा के छात्रों को पढ़ाने के लिए एक स्नातक डिग्री प्राप्त व्यक्ति की आवश्यकता नहीं है; एक मैट्रिक पास व्यक्ति भी इसे अच्छी तरह पढ़ा सकता है। उसी प्रकार आध्यात्मिक

ज्ञान प्रदान करने में भी अलग-अलग शक्तियों से युक्त विभिन्न कोटि के गुरु हो सकते हैं एवं शिष्य भी विभिन्न स्तर के हो सकते हैं। और उनके बीच सम्पर्क हो सकता है यद्यपि न गुरु और न शिष्य ही उच्चतम कोटि के हैं। उस प्रकार अध्यात्मिक ज्ञान अथवा आध्यात्मिकता का संचार हो सकता है। अतएव, जैसा कि मैंने कहा है, जब तक शिष्य पूरी तरह तैयार नहीं है, तबतक उसे गुरु को दोषी नहीं ठहराना चाहिए कि उसे कुछ प्राप्त नहीं हो रहा है, जो होना चाहिए था। शिष्य को चाहिए कि सही योग्यता प्राप्त करने के लिए वह अपने आप को तैयार करे। इस तैयारी के बिना गुरु कुछ नहीं कर सकते हैं। श्रीरामकृष्ण ने भी एक शिष्य के संबंध में कहा था : "इसको देखो। वह चाहता है कि मैं इसके लिए दही तैयार करूँ, मक्खन तैयार करूँ एवं उसके मुँह में डाल दूँ। वह कुछ नहीं करेगा। वह आशा करता है कि मैं ही उसके लिए सब कुछ कर दूँ।" इस प्रकार की मनोवृति शिष्य को नहीं रखनी चाहिए। तो साधारण तौर पर शिष्य के लिए दीक्षा का क्या तात्पर्य है? इसका अर्थ है कि वह एक व्रत लेता है, एक प्रतिज्ञा ग्रहण करता है कि वह अपने जीवन भर गुरु के आदेश का पालन करेगा। किस चीज के लिए? ईश्वरानुभूति के लिए वह जीवन भर प्रयत्न करेगा। किन्तु ईश्वर अपनी इच्छानुसार दर्शन देंगे। यहाँ पर श्रीश्री माँ के जीवन की एक घटना का उल्लेख करता हूँ। एक साधु ऋषिकेश में तपस्या कर रहे थे। उन्होंने श्रीश्रीमाँ को लिखा, "माँ, इतने वर्षों से मैं ईश्वर को पुकार रहा हूँ, परन्तु अभी तक कुछ नहीं हुआ है।" श्री श्री माँ ने अपने सेवक से कहा, "उसको लिखो, 'तुम साधु हुए हो। ईश्वर को पुकारना तुम्हारा कर्तव्य है। उनकी जब इच्छा होगी तभी तुम्हें दर्शन देंगे। उनको पुकारना तुम्हारा कर्तव्य है।'" अतएव जो धर्म को अपनाता है, उसे इसी प्रकार का मनोभाव रखना चाहिए। उसके पास ऐसी दृढ़ता रहनी चाहिए कि मैं ईश्वर को पुकारता रहूँगा ताकि वे प्रसन्न हों। वे अपनी इच्छानुसार मुझे दर्शन देंगे, किन्तु मेरा कर्तव्य है सदा उनको पुकारते रहना। साधारणतः दीक्षा का यही मतलब है। निःसंदेह, दीक्षा के द्वारा कुछ नया प्रकाश शिष्य को प्राप्त होता है। उसके अन्दर ईश्वर की चाह थी किन्तु किसी अनुभवी व्यक्ति के द्वारा वह सही मार्ग पर परिचालित नहीं किया गया था। उसके मन में असंगत विचार होते हैं एवं जबतक वह किसी दक्ष व्यक्ति द्वारा निर्दिष्ट पथ पर नहीं चलता है तबतक पग-पग पर उसके भटकने एवं पथ-च्युत होने की संभावना रहती है। कुछ लोग मनमाने ढंग से मंत्र ग्रहण करते हैं। उनके मंत्र कुछ भी हो सकते है, अर्थहीन भी हो सकते हैं। किन्तु वे वैसा ही करते हैं एवं कुछ समय के बाद किसी अन्य व्यक्ति के पास जाकर कहते हैं। "मुझे मंत्र दीजिए।" फिर किसी और व्यक्ति के पास जाकर कहते हैं, "मुझे मंत्र दीजिए।" उनके जीवन में कोई स्थिरता नहीं होती है। स्थिरता तब आती है जब औपचारिक रूप से किसी एक व्यक्ति को गुरु रूप में वरण किया जाता है। हमलोग स्कूल जाते हैं। वहाँ हमलोगों को पढ़ाने के लिए कुछ शिक्षक निश्चित किये होते हैं। हमलोग उनकी शिक्षा को ग्रहण कर उन्नति करते हैं। शिक्षक एवं छात्र दोनों के अन्दर कुछ दृढ़ता चाहिए। संक्षेप में दीक्षा का यही अर्थ है।

(ख) ईश्वर तथा ईश्वरानुभूति

प्रश्न : ईश्वर क्या है? तथा ईश्वरानुभूति क्या है?

उत्तर :—धर्म ग्रन्थ आदि को पढ़कर इस प्रश्न का उत्तर तुम्हें स्वयं ढूँढ़ निकालना होगा। एक बार आल्डस हक्सले की पुस्तक में मैंने पढ़ा था कि ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से प्रत्येक मनुष्य का अपना-अपना दार्शनिक विचार (metaphysics) होता है। खुद के बारे में दूसरों के बारे में एवं संसारादि के संबंध में उसकी कुछ धारणाएँ होती हैं। इसके संबंध में कोई न कोई खास सिद्धांत उसके मन में कार्यरत रहता है। व्यक्ति इसके बारे में सचेतन नहीं भी हो सकता है, परन्तु इसका अस्तित्व रहता है। अतएव इस प्रकार के दार्शनिक विचारों को अपने मन में स्पष्ट कर लेना चाहिए, "मेरा मन इस स्थिति में है।

ईश्वर कौन हैं ? ईश्वर के बारे में मुझे क्या चिन्तन करना चाहिए ? गुरु कौन हैं ? शिष्य कौन है ?—इत्यादि के संबंध में मैं ऐसा सोचता हूं।" इस प्रकार के विचार मन में एक साथ मिश्रित हो गये हैं। उनका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। तभी तुम जान सकते हो कि ईश्वर कौन हैं ? जबतक उच्च विचारों को ग्रहण करने के लिए तुम्हारा मन स्थिर, पक्का एवं सक्षम नहीं हो जाता, तब तक तुम ईश्वर को कैसे जान सकते हो ? विविध प्रकार से ईश्वर की व्याख्या की गयी है। अपने-अपने मन के दार्शनिक झुकाव (philosophical bent) के अनुसार लोग उनकी व्याख्या करते हैं। अद्वैतवादियों के लिए ईश्वर का अर्थ 'सच्चिदानन्द' है। ईश्वर के संबंध में उनकी यही धारणा है। किन्तु जब तक वह व्यावहारिक जगत में है तब तक वह ईश्वर को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में चिन्तन करता है, जो किसी खास विधि का अवलम्बन करके कार्य करते हैं। एक बार भगवान श्री रामचन्द्र ने हनुमान जी से पूछा —"तुम मेरे बारे में क्या सोचते हो ?" हनुमान जी ने उत्तर दिया -

"देह बुद्ध्या त्व दासोऽहं जीव बुद्ध्या त्वदंशकः।
आत्म बुद्ध्या त्वमेवाहमिति में निश्चिता मतिः॥

—जब मैं अपने को शरीर समझता हूँ तब मैं आपका दास हूं; जब मैं अपने-आपको जीव के रूप में सोचता हूँ तब आपका अंश हूं तथा जब मैं अपने-आपको आत्मा के रूप में देखता हूं तब मैं आपसे अभिन्न हूं।" अतएव यही संबंध है। कभी वे अपने आप को श्री रामचन्द्र का सेवक समझते हैं, कभी अपने-आप को उनका अंश समझते हैं और कभी अपने-आप को उनके साथ अभिन्न समझते हैं। इन तीन प्रकार के विचारों को क्रमशः द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद एवं अद्वैतवाद कहा जाता है। अतएव ईश्वर के संबंध में हमारी धारणाएँ अलग-अलग हैं। साधारण लोगों को ईश्वर के संबंध में यही ज्ञान दिया जाता है कि ईश्वर साकार है जो सृष्टि, स्थिति, लय आदि करते हैं तथा लोगों को उनके द्वारा किये गये कर्मों का फल देते हैं। वे साकार भी हो सकते हैं और निराकर भी। अद्वैतवादियों के लिए वे निराकार हैं तथा विशिष्टाद्वैतवादियों एवं द्वैतवादियों के लिए साकार हैं। जब तक अद्वैतवादी व्यावहारिक जगत में हैं तबतक उनके लिए भी ईश्वर साकार हैं। उदाहरणस्वरूप, शंकराचार्य कहते हैं,

"सत्यापि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः॥

— तुम्हारे और मेरे बीच के भेद यदि समाप्त भी हो जायें तो पर भी मैं तुम्हारा हूँ, न कि तुम मेरे हो, क्योंकि तरंग समुद्र की है, न कि समुद्र तरंगों का है।" अतः शंकराचार्य ने भी, जो अद्वैतवाद के सर्वश्रेष्ठ प्रचारक थे तथा जिन्होंने अद्वैत-दर्शन को हमलोगों तक पहुंचाया था, कहा है कि 'वे ईश्वर के हैं'—अर्थात् वे ईश्वर के अंश, ईश्वर के दास हैं। उनके तथा ईश्वर के बीच एक संबंध था। इसलिए वे कहते है : 'मैं तुम्हारा हूं।' फिर जब साकार-ईश्वर का चिन्तन करते हो तो वे विभिन्न रूपों में तुम्हारे समक्ष प्रकट हो सकते हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा, काली आदि रूपों में प्रकट हो सकते हैं। फिर सगुण-निराकार ईश्वर का भी चिन्तन किया जा सकता है जो हमारा कल्याण करते हैं, हमारे कर्मों का फल देते हैं एवं हमारी प्रार्थनाओं को सुनते हैं। ब्रह्म-समाजी, मुस्लिम एवं ईसाइयों के लिए ईश्वर निराकार, किन्तु सगुण हैं। वे कार्यों का सम्पादन कर सकते हैं, उनके अन्दर शक्ति निहित है। अतः ऐसी भी धारणा है। लेकिन हम हिन्दू ईश्वर का चिन्तन साकार रूप में भी करते हैं। अतएव ईश्वर के संबंध में विभिन्न प्रकार की धारणाएं हो सकती हैं। संबंधित व्यक्तियों की योग्यता के अनुसार ये सभी धारणाएँ सत्य हैं। ईश्वर को किसी खास विचार समूहों में बाँधने की आवश्यकता नहीं है। उनके कई रूप एवं बहुविध अवस्थाएँ हैं। अतएव, इसके लिए हमें आपस में झगड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। एक व्यक्ति ईश्वर का चिन्तन साकार रूप में कर सकता है तो अन्य व्यक्ति के लिए वे निर्गुण-निराकार-सच्चिदानन्द स्वरूप भी हो सकते हैं। ईश्वर के संबंध में अलग-अलग लोगों के विचार अलग-अलग हो

सकते हैं एवं उनकी ईश्वरानुभूति भी उनके द्वारा पोषित ईश्वर संबंधी धारणाओं के अनुसार ही होगी। किसी-किसी के लिए ईश्वर साकार हो सकते हैं एवं उनके समक्ष काली, दुर्गा, विष्णु, शिव आदि रूपों में प्रकट हो सकते हैं तथा अन्य व्यक्ति सगुण निराकार सत्ता के रूप में उनका चिन्तन कर सकता है। फिर ईश्वर का चिन्तन अपने हृदयस्थ किसी खास सत्ता के रूप में भी किया जा सकता है जो पग-पग पर हमारा मार्ग-दर्शन करते हैं। यह भी एक प्रकार की ईश्वरानुभूति है। ईश्वर-दर्शन भी एक प्रकार की ईश्वरानुभूति है जैसे श्रीरामकृष्ण ने माँ काली के दर्शन साकार रूप में किये थे। श्रीरामकृष्ण ने माँ काली के दर्शन निराकार-सत्ता के भी रूप में किये थे। उन्होंने इस प्रकार की अनुभूति प्राप्ति की थी। अतएव, पुरुष अथवा स्त्री की व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार ईश्वरानुभूति के ये विभिन्न प्रकार हैं। इसकी कोई इति नहीं की जा सकती है।

प्रश्न :—हमलोग यह कैसे जानेंगे कि हम ईश्वर की ओर बढ़ रहे हैं?

उत्तर :—मन की शांति। यदि तुम्हें मन की शांति हो और यदि तुम सभी परिस्थितियों में शांति से हो तो तुम समझ सकते हो कि तुम्हारी प्रगति हो रही है। एकमात्र यही इस प्रश्न का सरल उत्तर हो सकता है। निःसन्देह, यदि हमें ईश्वर-दर्शन हुआ हो तो वह इस बात का प्रमाण है कि हम ईश्वर के निकट पहुँच रहे हैं। यदि तुम्हारे मन में सदा ईश्वर-संबंधी विचार हों, या स्वप्न में भी यदि तुम्हें अपने इष्ट, गुरु अथवा किसी महान् आध्यात्मिक पुरुषों के दर्शन हों या तुम्हारे मन में सदा उच्च विचार रहे तो जानना कि तुम प्रगति कर रहे हो। यदि तुम्हारे मन का विस्तार हो एवं वह प्रेम के बंधन में सम्पूर्ण विश्व को बाँध ले, तो यह भी आध्यात्मिक प्रगति का एक लक्षण है।

(ग) कर्मयोग

प्रश्न :—श्री रामकृष्ण ने कहा है कि कलियुग के लिए कर्मयोग बहुत कठिन है। अतएव भक्तियोग ही युग-धर्म है। परन्तु, स्वामी विवेकानन्द तो इसके विपरीत बताते हुए मालूम पड़ते हैं।

उत्तर :—यह सही है कि स्वामीजी का कथन विपरीत लगता है। श्री रामकृष्ण कहते हैं कि कर्मयोग कठिन है। मैं न तो श्री रामकृष्णदेव और न स्वामीजी के संबंध में कोई प्रश्न उठाता हूँ, बल्कि मैं तुम्हारे सामने तथ्य रख रहा हूँ; क्या कोई भी योग आसान है? कर्मयोग को ही लें। श्री रामकृष्ण कहते हैं कि कर्मयोग कठिन है। वास्तव में, यह कठिन है। वे कहते हैं कि फल कामना रहित एवं अहं-शून्य होकर कर्मयोग का पालन करना होगा। कर्त्तापन एवं फलभोग की इच्छा नहीं रहनी चाहिए। ऐसा करना बहुत कठिन है। श्री रामकृष्ण ने शंभु मल्लिक से कहा था, "निष्काम भाव से (कर्म) कर सको तो अच्छा है, परन्तु निष्काम कर्म करना बड़ा कठिन है, न जाने किस तरफ से कामना निकल पड़ती है।"[1] यह बिल्कुल सही है। इसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते हैं। यह एक तथ्य है।

दूसरी ओर भक्त की बात को लें। भक्त भी अहंकारी हो सकता है। अपने शरीर पर कुछ चिन्हों को धारणकर तथा मुख से बड़ी-बड़ी बातें कर वह यह दिखा सकता है कि वह बहुत बड़ा भक्त है जबकि भीतर से वह एक प्रवंचक हो सकता है। फिर कुछ भक्त बाहर से किसी खास धर्म का अनुसरण कर सकते हैं परन्तु व्यवसाय में दूसरों को ठग सकते हैं एवं मिथ्या भाषण कर सकते हैं। दैनन्दिन जीवन में ऐसा प्रायः देखा जाता है। यह धर्म नहीं है। अतः भक्ति भी कठिन है। और ज्ञानयोग तो कठिन है ही।

यह संबंधित व्यक्ति के ऊपर निर्भर करता है। परन्तु भक्ति इस अर्थ में सहज है कि यह हमललोगों के लिए स्वाभाविक है, क्योंकि हम लोगों से प्रेम करते हैं, हम दूसरों को प्रेम करना चाहते हैं। इस मानवीय प्रेम को ईश्वर की ओर मोड़ देने पर यह ईश्वर तक पहुँचने का एक सुगम पथ हो जाता है।

१. श्री श्रीरामकृष्ण वचनामृत, तृ० खण्ड, पृ० १७६

श्रीरामकृष्ण के कथन का यही तात्पर्य है। परन्तु जैसा कि मैंने कहा है, भक्ति-पथ भी कठिनाइयों से भरा-पूरा है। शुद्धा-भक्ति आसानी से नहीं होती, तुम्हें इसके लिए कठिन साधना करनी पड़ेगी। ईश्वर-चिन्तन, जप-ध्यान सदग्रन्थों का पाठ अथवा श्रवण तथा सत्संग आदि करने में बहुत समय व्यतीत करने होंगे। तभी भक्ति होगी।

अब पुनः कर्मयोग पर आवें। इसका वास्तविक अर्थ क्या है? हाल ही में मैं मधुसूदन सरस्वती का ग्रन्थ पढ़ रहा था। वे कहते हैं कि कर्मयोग का अर्थ है—इष्टपूर्तदत्तः बलि देना, धर्मशाला आदि का निर्माण करवाना, कुआँ आदि खुदवाना तथा दान देना। शास्त्रों में इन चीजों का विधान है। यदि हम भी ऐसा करें तो यह किसी खास विचार-धारा वालों के अनुसार कर्मयोग होगा। इसमें ईश्वर का कोई स्थान नहीं है। प्राचीन मीमांसकगण कहते हैं कि अगर तुम बलि प्रदान करो, शास्त्र-विहित अमुक मंत्रों का उच्चारण करो, तो यह तुम्हें लक्ष्य तक पहुँचा देगा। वह लक्ष्य क्या है? स्वर्गगमन। इस प्रकार का कर्मयोग केवल वहीं तक ले जाता है, केवल पितृलोक तक ही ले जाता है।

फिर कर्मयोग के साथ भक्ति मिश्रित की जा सकती है। जैसे, मैं ईश्वर की प्रीति के लिए कर्म कर सकता हूँ, ताकि मेरा मन ईश्वरानुभूति के लिए शुद्ध हो सके। यदि ऐसी भावना लेकर तुम कर्म करो, कर्म-फलों को ईश्वर के श्री चरणों में समर्पित करो तथा अपने अहं का यथासंभव लोप करो तो यह भक्ति-मिश्रित-कर्मयोग हमें उस इष्ट-देव से संबंधित लोक में ले जाता है जिसकी हम आराधना करते हैं। यह तुम्हें बैकुण्ठलोक, विष्णु लोक शिवलोक आदि ले जा सकता है या ब्रह्मलोक की प्राप्ति करा सकता है जिसे 'हिरण्यगर्भ' भी कहते हैं। और वहाँ से अंत में मुक्त हो सकते हो। तुम्हारे इष्ट तुम पर प्रसन्न होकर सदा के लिए तुम्हें मुक्त कर दे सकते हैं। कर्मयोग के द्वारा यह भी संभव है, यदि यह भक्ति-मिश्रित हो।

अब शंकराचार्य कहते हैं कि जब कर्मयोग में अहं का लोप हो जाता है एवं कर्मफल की चाह मिट जाती है तो वह कर्म ज्ञान के तुल्य हो जाता है। यह कर्म ज्ञान से भिन्न नहीं हैं।

अतएव, हमें वास्तविक रूप से समझना चाहिए कि कर्मयोग से हम क्या समझते हैं? यदि कर्मयोग का मतलब हम 'इष्टपूर्तदत्त' समझें तो यह कर्मयोग का एक अर्थ होगा एवं इसका उद्देश्य वही होगा जैसा मैंने पहले बताया है। फिर यदि यह भक्ति-मिश्रित हो तो यह अन्य प्रकार के फल की प्राप्ति करायेगा। तथा अहं शून्य एवं फलकामना रहित होने पर इसे ज्ञान में परिवर्तित किया जा सकता है। इस प्रकार के कर्मयोग के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं—राजर्षि जनक। वे कहते हैं "मेरे पास सारी चीजें हैं जिनकी चाह लोगों को रहती है। मेरे राजभवन में सभी वस्तुएँ भरपूर हैं। परन्तु, भले ही मेरी राजधानी, मिथिला, भस्मीभूत हो जाय तो पर भी मेरे ऊपर इससे कोई आघात नहीं लगेगा।" इस प्रकार की अनासक्ति सच्चे कर्मयोगी के अन्दर जरूर होनी चाहिए। जनक द्वारा आचरित कर्मयोग शंकराचार्य द्वारा परिभाषित ज्ञान से पृथक् नहीं है। हमें इसी तरह से समझना होगा। केवल एक शब्द-मात्र का व्यवहार करने एवं इसमें बह जाने से काम नहीं चलेगा। तुम्हें इसके भीतर प्रवेश करना होगा एवं समझना होगा कि उस शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है, तभी तुम इसके पीछे निहित फ़िलॉसफी को ग्रहण कर सकते हो। स्वामी जी ने इस अंतिम प्रकार के कर्मयोग का उपदेश किया है, जिसे उन्होंने "जीव में शिव की सेवा" की संज्ञा दी। इसका आधार-स्वरूप आचार्य शंकर का अद्वैत-दर्शन हैं। आचार्य शंकर ने कहा था, "सभी जीव ब्रह्म ही हैं।" स्वामीजी ने इसका उपदेश किया एवं इसी भाव के अनुसार किया। श्री रामकृष्ण ने भी दूसरों की भलाई के लिए कार्य किया था। वास्तव में, सेवा का संदेश स्वामीजी एवं अन्य लोगों को उन्होंने ही सुनाया था। अतएव उनके उपदेशों में कोई विरोध नहीं है।

[१८-३-८७ को राजकोट, रामकृष्ण आश्रम में भक्तों के द्वारा पूछे गये प्रश्नों के जो उत्तर पूजनीय श्रीमत स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज ने दिये थे, वे ही 'प्रबुद्ध-भारत', दिसम्बर १९८८ से यहाँ साभार अनूदित हुए हैं—स०।]

नवयुवकों के प्रति

श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज

(२४ दिसम्बर १९८५ से ३० दिसम्बर १९८५ तक बेलुड़ मठ में रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन युवा-सम्मेलन का आयोजन हुआ था। इस सम्मेलन में पूरे भारतवर्ष से करीब १४ हजार युवक एवं युवतियों ने भाग लेकर एक नये इतिहास की सृष्टि की थी। इसी सम्मेलन के उद्घाटन-भाषण में रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के तत्कालीन महाध्यक्ष ने उन्हें सम्बोधित कर जो कुछ कहा था उसी का हिन्दी रूपान्तर यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है — सं०।)

तुमलोग एक ऐसी तीर्थभूमि पर बैठे हुए हो जिसका सम्पूर्ण वातावरण आध्यात्मिक भाव से परिपूर्ण है। तुम्हारी बायीं ओर (श्रोतागण उत्तराभिमुख बैठे थे) खड़ा है एक विशाल, सुन्दर एवं दीर्घ मन्दिर जिसके अन्दर श्रीरामकृष्ण की एक विस्मयकारी संगमरमर की मूर्ति अधिष्ठित है एवं उनका पवित्र स्मृति-चिन्ह संरक्षित है। तुम्हारी दायीं ओर प्रवाहमान हैं माँ गंगा जिसके तट पर विराजित हैं श्री श्रीमाँ, स्वामी जी एवं स्वामी ब्रह्मानन्द जी के मन्दिर तथा श्रीरामकृष्णदेव के सात लीला-पार्षदों की समाधि-पीठ। और तुम्हारे सामने है स्वामीजी के नेतृत्व में उन महापुरुषों के द्वारा निर्मित मठ। ये लोग एवं श्रीरामकृष्ण के अन्यान्य साक्षात् संन्यासी शिष्यों ने इस मठ में वास किया है एवं इसी भूमि पर विचरण किया है। जिस कमरे में स्वामीजी महासमाधि में लीन हुए थे वह कमरा भी तुम्हारे सामने अवस्थित है। यहाँ का पूरा का पूरा परिवेश आध्यात्मिकता से स्पन्दित है।

किन्तु इतना ही नहीं, ग्रैंडट्रंक रोड से रामकृष्ण मिशन मार्ग में प्रवेश करने पर तुमलोग अपनी बायीं ओर देख सकते हो बहुमुखी शिक्षा-प्रकल्प जिसके अन्तर्गत हैं बहु-शिल्प-शिक्षा केन्द्र (polytechnic), महेश यांत्रिकी विभाग, तत्त्वमंदिर एवं विद्यामंदिर। बेलुड़ मठ के प्रधान प्रवेश द्वार के अन्दर प्रवेश करते ही अपनी दायीं ओर देखोगे रामकृष्ण मिशन दातव्य चिकित्सालय। इसके थोड़ा दक्षिण में है आवासीय बी० एड० कॉलेज, जन शिक्षा मंदिर एवं और भी कई छोटे-छोटे शिक्षा संस्थान। प्रधान मंदिर के सामने है — रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन का प्रधान कार्यालय (Head Quarters)। इस कार्यालय के विभागों के द्वारा पत्राचार, लेखा-जोखा (accounts), राहतकार्य, जन-कल्याण कार्य एवं ग्रामीण विकास कार्य इत्यादि चलाये जाते हैं। अतएव तुमलोग एक ऐसी सक्रिय आध्यात्मिकता के बीच में आ गये हो जहाँ अध्यात्म-जीवन शुद्धता-भित्तिक सांसारिक गति-विधियों के साथ युक्त हुआ है। इस युग्म प्रतिष्ठान (रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन) के लिए स्वामीजी द्वारा निरूपित आदेश है : **'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च'** — अपनी मुक्ति का साधन करना एवं जगत का कल्याण करना। **'जगद्धिताय च'** को श्रीरामकृष्ण की वाणी के प्रकाश में समझने की आवश्यकता है। तुमलोग जानते हो, एक दिन दया की बात कहते-कहते वे अचानक रुककर बोले थे : "तुम कौन हो दया करने वाले? एकमात्र ईश्वर ही दया कर सकते हैं। तुम जीव की शिव ज्ञान से सेवा-मात्र कर सकते हो।' 'इस भाव ने कर्मयोग संबंधी हमारी धारणा में एक नयी दिशा उन्मोचित कर दी है। यह समाज-सेवा मात्र नहीं है, बल्कि चित्तशुद्धि के लिए यह एक आध्यात्मिक साधना है। अहंभाव से शून्य होकर ईश्वरार्पण बुद्धि से दूसरों की सेवा करना है। श्रीरामकृष्ण इस भाव को एक कदम आगे बढ़ाकर ले गये एवं

इसे द्वैत से अद्वैत भूमि पर प्रतिष्ठित कर दिया। उपकारी अथवा उपकृत व्यक्ति से ईश्वर पृथक् नहीं हैं। अतएव ईश्वर को कर्मफल समर्पित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। रक्षान्तर से, श्रीरामकृष्ण द्वारा प्रवर्तित सेवाधर्म में 'कर्म ही ईश्वरोपासना है।' इस कर्म के द्वारा आध्यात्मिक उन्नति के सिवाय अन्य कोई स्वार्थ-साधन नहीं हो सकता है। उपकृत व्यक्ति के पास से धन्यवाद पाने की आशा नहीं करके, उपकारी व्यक्ति को उनके पास कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि उपकृत व्यक्ति ने उन्हें सेवा करने का सुयोग देकर उनका ही मंगल साधन किया है। एक दिन श्रीरामकृष्ण ने कृष्णदास पाल नामक एक राजनैतिक नेता से पूछा था : "तुम्हारे जीवन का क्या उद्देश्य है?" उत्तर मिला : "जगत का उपकार करना।" इस पर श्रीरामकृष्ण ने सविस्मय कहा था : "जगत के संबंध में तुम्हारी क्या धारणा है? तुम्हारे समान एक क्षुद्र मनुष्य जगत का क्या उपकार करेगा? नहीं, नहीं तुम दूसरों की सेवा मात्र कर सकते हो।" इसी भाव ने भारत के नवजागरण के अग्रदूत स्वामी विवेकानन्द को रामकृष्ण संघ की प्रतिष्ठा करने के लिए प्रेरित किया था, जिसके फलस्वरूप धार्मिक एवं जागतिक (Sacred and secular) भावों के बीच का व्यवधान अपसारित हुआ तथा आध्यात्मिकता के साथ सामाजिक गतिशीलता का मिलन हुआ।

'धर्म मानव को अकर्मण्य बना देता है'—इस भ्रामक एवं अहितकारी प्रचार को इस भाव ने मिथ्या प्रमाणित कर दिया है। यदि वैसा होता तो, श्रीरामकृष्ण के अनुयायीगण इस युगप्रतिष्ठान की स्थापना कैसे कर सकते थे? अभी वे लोग विश्व के चारों दिशाओं में फैल रहे हैं। तुमलोग खुले मन से स्वयं विचार करके देखो। यहाँ तक कि पाश्चात्य जगत में भी, जहाँ इस तरह का मिथ्या प्रचार सर्वप्रथम किया गया था, हाल ही में पोलैंड ने पोप को अपनी आँखों से यह देखने के लिए आमंत्रित किया था कि उस देश में धर्म का दमन नहीं किया जाता है। रूस एवं चीन ने भी अब अपने नागरिकों को ईश्वरोपासना करने की स्वतंत्रता दे रखी है। अमेरिका, इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस आदि उन्नत पाश्चात्य देशों ने धर्म को अस्वीकार करके उन्नति नहीं की है। तुमलोगों में जो इतिहास के छात्र हैं उन्हें मालूम है कि भारतवर्ष अन्य किसी भी देश से वर्तमान की तरह पिछड़ा हुआ नहीं था, बल्कि सभ्यता के पुरोभाग में था एवं यह संभव हुआ था धर्म को स्वीकार करके, न कि उसका वर्जन करके। आर्य, बौद्ध, गुप्त, चोल एवं चालुक्य युग में ऐसा हुआ था। और शिवाजी ने अपनी सैन्यवाहिनी के ऊपर गैरिक पताका उड़ाकर भारत के पश्चिमांचल को मुक्त किया था। ऐ मेरे भाइयो एवं बहनो, तुमलोग फंदेबाजों की बातों से विभ्रान्त न होना। खुली आँखों से प्रत्येक वस्तु को देखो एवं इस विश्वास के साथ आगे बढ़ते चलो कि तुमलोग गलत रास्ते पर नहीं जा रहे हो।

तुमलोग युवा हो। तुमलोगों का मन उन्मुक्त है। तुमलोग ही रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के द्वारा प्रचारित उच्चादर्श को वास्तव में रूपायित कर सकते हो। स्वामीजी यह दिखा गये हैं कि आदर्शों को किस प्रकार वास्तवायित किया जा सकता है तथा आदर्श वास्तवायित करने के लिए ही होता है। राँची (मोराबादी रामकृष्ण आश्रम) की एक घटना मुझे याद आती है। प्रतिसंध्या हमलोग श्री श्रीरामकृष्ण वचनामृत का पाठ करते थे तथा तत्पश्चात् थोड़ी-बहुत आलोचनादि किया करते थे। एक दिन तीन वृद्ध हमलोगों के साथ सम्मिलित हुए। पाठ एवं आलोचना के बाद उनमें से एक ने कहा : "तो ये सब केवल आदर्श मात्र हैं। यही न?" मैंने संक्षिप्त उत्तर दिया—'हाँ'। और वे लोग चले गये। किन्तु बाद में मुझे ख्याल आया कि वे लोग आदर्श का अर्थ समझते हैं—शून्य में लटकाकर रखी जाने वाली आधारहीन वस्तु, जिसका वास्तव-जीवन से कोई सम्पर्क नहीं है। किन्तु श्रीरामकृष्ण एवं स्वामीजी की वाणी निष्क्रिय आदर्श नहीं हैं, बल्कि वे ऐसे आदर्श हैं जो वास्तव में रूपायित करने योग्य हैं। इसीलिए उनलोगों ने मुख्यतः युव-सम्प्रदाय के ऊपर निर्भर किया था। श्रीरामकृष्ण ने अपनी भावधारा के प्रचार-प्रसार तथा उसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए नरेन्द्रनाथ आदि

कुछ युवकों को ही चुना था। आत्महित तथा भारत एवं समग्र विश्व का कल्याणसाधन व्रत में उनकी पताका को उठाने के लिए स्वामीजी ने भी भारत के नवयुवकों का आह्वान किया है। मुझे पूर्णाशा है कि जो कार्य स्वामीजी तुमलोगों को अर्पित कर गये हैं, उन्हें तुम निश्चय ही सुसम्पन्न करोगे।

स्वामीजी द्वारा अर्पित कार्य वास्तव में क्या है? जनसाधारण एवं नारीजाति के संबंध में राजनीतिज्ञों के द्वारा कुछ भी सोचने के पहले ही स्वामीजी ने घोषणा की थी, जनगण एवं नारी जाति की उन्नति जितने दिनों तक नहीं होती है उतने दिनों तक भारत की अग्रगति असंभव है। और शिक्षा एवं व्यक्तिगत स्वाधीनता के माध्यम से उनकी उन्नति करनी होगी। किन्तु उनके अन्तर्निहित धर्मभाव को आघात किये बिना यह करना होगा: स्वामीजी के अनुसार वास्तविक धर्म का अर्थ है—आत्मा अथवा ब्रह्म में आस्था। आत्महित एवं आत्मोन्नति के लिए दूसरों के ऊपर अधिक निर्भरशील होना ठीक नहीं है। किन्तु हमलोगों के अन्दर असीम शक्ति एवं संभावना के आधार-स्वरूप जो आत्मा या ब्रह्म है इसमें विश्वास रहना चाहिए। स्वामीजी भारी आध्यात्मिक अनुभूति सम्पन्न होकर भी गतिशीलता के मूर्त प्रकाश थे। विभिन्न कर्म-क्षेत्रों में वे अपनी अमिट छाप छोड़ गये हैं। और ऐसा उन्होंने धर्म को अस्वीकार करके नहीं, बल्कि उसमें प्रगाढ़ निष्ठा रखकर किया है। अतएव तुमलोगों को जो कार्य करने हैं उनमें से एक है—धर्मभाव के ऊपर बिना कोई आघात किये शिक्षा के माध्यम से जनसाधारण एवं नारी जाति का उन्नति-साधन करना। फिर इस शिक्षा को मात्र सैद्धान्तिक होने से नहीं चलेगा, उसे सामाजिक एवं अर्थनैतिक शांति एवं समृद्धि लाने में सक्षम होना होगा। स्वामीजी ने कहा था: "जो धर्म विधवाओं के अश्रुमोचन नहीं कर सकता है उस धर्म में मैं विश्वास नहीं करता हूँ।" इसके बाद कुसंस्कार तथा अस्पृश्यता, जातिभेद आदि कुप्रथाओं का भी समूल उच्छेद करना होगा। किन्तु यह विप्लव के पथ से नहीं, बल्कि निर्माण के पथ से करना होगा। स्वामीजी ने कहा है: "अन्यान्य समाजसंस्कारकों ने सतही कार्य किया है एवं उसके अनुरूप फल पाया है।" किन्तु स्वामीजी एक आमूल संस्कारक थे। वैषयिक एवं पारमार्थिक उभय भाव से उन्नत सामग्रिक जीवन के संबंध में गंभीरतर दृष्टिभंगी से इस जाति के आमूल संस्कार का उद्भव होता है। धर्म की दुहाई देकर साधारण मनुष्य की अर्थनैतिक प्रगति के पथ पर जो लोग बाधा खड़ी करते हैं उनके ऊपर स्वामीजी बहुत ही क्षुब्ध थे। स्वामीजी ने तो यहाँ तक कहा है: "गीतापाठ करने की अपेक्षा फुटबाल खेलने से तुमलोग स्वर्ग के अधिक निकट पहुँचोगे।" सक्रिय आध्यात्मिकता की भित्ति पर तुमलोगों को अपने शरीर एवं मन को सुदृढ़ करना होगा। स्वामीजी ऐसा मनुष्य चाहते थे जिसकी मांसपेशियाँ लौह के सदृश दृढ़ एवं स्नायु इस्पात निर्मित होगा तथा जिसके बीच एक ऐसे मन का वास होगा जो वज्र के उपादान से गठित होगा।

कवि रवीन्द्रनाथ द्वारा रचित एक गीत की कुछ पंक्तियों की आवृत्ति कर मैं अपना संक्षिप्त वक्तव्य समाप्त करता हूँ—

हे विजयी वीर!
नवजीवन के प्रभात में,
नव आशा का खड्ग तुम्हारे हाथ में;
संशयों का विध्वंस करो,
सुकठोर वार से।
तुम्हारी जय हो।
तुम्हारी जय हो॥

पत्रावली

(१)

श्रीरामकृष्ण मठ
बेलुड़ मठ
७-१०-८०

प्रिय,

तुम्हारा १.१०.८० का पत्र मिला। तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक है, यह जानकर प्रसन्नता हुई। तुमने जो प्रश्न पूछा है उसके संबंध में चिन्ता करने की कोई बात नहीं है।

ध्यान प्रारंभ करने के कुछ देर बाद पैर बदल दो। कुछ काल बाद तुम बिना परिश्रम के दीर्घ समय तक बैठ सकोगे।

मन की चंचलता की तरफ ध्यान न देकर केवल ईश्वर तथा मंत्र-जप पर मन केन्द्रित करने से चंचलता अपने आप कम हो जायगी।

निरर्थक सन्देहों को तुम जिस प्रकार विचार की सहायता से दूर करते हो वैसे ही करते रहना। वही उनको हटाने का उपाय है।

निर्विकल्प समाधि की अनुभूति तथा 'अहं ब्रह्मास्मि' की अनुभूति में 'मैं' की अनुभूति नहीं रहती, वह ठीक ही है। परन्तु तुम्हारे लिए इस अवस्था में इन प्रश्नों की कोई आवश्यकता नहीं है।

शीघ्रता से ईश्वर प्राप्ति के लिए, तुम्हारी दीक्षा के समय जैसे बताया गया है ठीक उसी ढंग से उपासना करते रहना। निराश होने का कोई कारण नहीं है। तुम अपनी पढ़ाई की तरफ भी अच्छी तरह से ध्यान दो।

.....श्री श्री ठाकुरजी की कृपा तुम पर सदा बनी रहे, यही मेरी प्रार्थना है।

शुभाकांक्षी
गम्भीरानन्द

(२)

बेलुड़ मठ
१६-४-८१

प्रिय,

जनवरी महीने में प्रेषित तुम्हारी चिट्ठी पूज्यपाद महाराज को मिली। तुम्हारा समाचार जानकर आनन्दित हुए। .....तुम्हारे जो प्रश्न थे (उसके उत्तर निम्नलिखित हैं) :

(१) श्री ठाकुर की पूर्ण मूर्ति ध्यान के वक्त नहीं देख पाते हो, उससे चिन्तित होने की कोई बात नहीं है। यह तो मन की पवित्रता और अभ्यास से ही होता है। और भी कुछ समय प्रार्थना पूर्वक अभ्यास करो, निश्चय ही आनन्द पाओगे। श्री ठाकुर जी के जिस अंश को देख पाते हो, चरणकमल या श्रीमुख, उसी को आधार करके प्रार्थना, जप आदि करो।

(२) जो व्याकुलता तुममें दिखाई दी है, वह तो भगवत्-कृपा का लक्षण है। एक तरफ वर्तमान कर्तव्य-पालन, पढ़ाई इत्यादि तो करना ही है और (दूसरी तरफ) जो समय तुम पाते हो, उस वक्त तीव्रता और व्याकुलता के साथ जप करो। यह तो तुमने ठीक ही लिखा है कि सिर्फ २० मिनट जप करने से कोई आनन्द नहीं मिलता है। मगर यह भी तो श्री ठाकुर की ही इच्छा है। जितना कर सकोगे उतना निष्ठा (Sincerity) के साथ करो एवं बाकी उनपर छोड़ दो।

और अन्य चिन्ताएँ, सोच विचार, संशय आदि तो आते ही रहेंगे। स्थिरता के साथ उनका मुकाबला करना होगा। अन्ततः 'वचनामृत' के कुछ पृष्ठ रोज पढ़ो और उसकी धारणा करने की चेष्टा करो।

यह मैंने पूज्यपाद महाराज की अनुमति से तुमको लिखा है।

उनका आशीर्वाद तुम पर सदा है। भय का कोई कारण नहीं है। इति

आत्मारामानन्द

स्वामी गम्भीरानन्दजी : कुछ संस्मरण

स्वामी स्मरणानन्द,
सचिव
रामकृष्ण मिशन सारदापीठ
बेलुड़ मठ

विशिष्ट-चरित्र-सम्पन्न पुरुष अपने सान्निध्य में आने वाले लोगों के ऊपर एक छाप छोड़ जाते हैं। स्वामी गंभीरानन्दजी एक ऐसे ही पुरुष थे जिनके साथ पाँच वर्षों तक रहने का दुर्लभ सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। उन दिनों वे अद्वैत आश्रम, मायावती के अध्यक्ष थे। बाद में भी, जब वे बेलुड़ मठ में विभिन्न पदों पर कार्यरत थे तथा जब वे संघाध्यक्ष थे। मुझे उनके निकट सम्पर्क में आने का सुअवसर प्राप्त हुआ था।

पहली बात जो सब का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करती थी, वह थी उनके नाम 'गंभीर महाराज' के साथ उनके गुण की अनुरूपता। वे गंभीर एवं एकान्त-प्रिय एवं अल्पभाषी थे। उनके गंभीर मुखमंडल को देखकर हर व्यक्ति उनके निकट जाने में हिचकिचाता था। उनके इस स्वभाव का कारण था उनकी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति, शास्त्रों के अध्ययन एवं धार्मिक तथा प्रशासनिक मामलों को लेकर सदा गहन चिंतन में रत रहना। परन्तु उनके बाह्य गंभीर रूप के भीतर उनका कोमल मन था जो उनके परवर्ती जीवन में विशेष रूप से देखने में आता है।

इस प्रकार समय के प्रति निष्ठावान किसी अन्य व्यक्ति को मैंने नहीं देखा है। हर चीज एवं हर मिनट में वे समयनिष्ठ थे। प्रत्येक क्षण का किसी न किसी रूप में वे सदुपयोग कर लेते थे। यहाँ तक कि विश्राम एवं हल्के व्यायाम के लिए भी उन्होंने अपनी दैनिक कर्मसूची में समय निर्धारित कर रखा था। इसी अभ्यास के कारण जीवन के अंतिम दिनों तक शास्त्रादि पढ़ने का अभ्यास उनमें बना हुआ था। यही वजह है कि रामकृष्ण-विवेकानन्द-वेदान्त साहित्य में उनका अवदान संघ के साधुओं में सर्वाधिक है।

स्वभाव से स्वल्पभाषी होने के बावजूद ब्रह्मचारियों की दिनचर्या के ऊपर वे तीक्ष्ण-दृष्टि रखते थे। मायावती एवं कलकत्ते में वे नियमित रूप से आधे घंटे तक मठ के सदस्यों को शास्त्र पढ़ाते थे। मायावती में उनकी बातचीत एवं कार्यों में उनका हास्य रूप विशेष रूप से प्रकट होता था। उन्हीं दिनों एक दिन उनके मुख से मैंने एक घटना सुनी थी। अपने साधु-जीवन के प्रारंभिक दिनों में वे रामकृष्ण मिशन, देवघर में थे। वहाँ रहते समय एक दिन वे साइकिल पर चढ़कर बाजार जा रहे थे। रास्ते में उनकी भेंट एक पंडे से हुई। पंडे ने संस्कृत में पूछा : "साधुनांद्विचक्रयानारोहनं कुत्र विहितम्?" —अर्थात् साधुओं को साइकिल पर चढ़ने का कहाँ विधान है? स्वामी गंभीरानन्दजी ने पीछे मुड़कर देखा और कहा : "कुत्र वा निषिद्धम्?"—और निषेध ही कहाँ है? यह कहकर वे आगे बढ़ गये।

स्वामी गंभीरानन्दजी का जीवन तपोमय था। उनकी आवश्यकताएँ बहुत ही कम थीं। १९५० ई० में जब वे अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष थे तब इसके कलकत्ता केन्द्र को एक सुन्दर नये मकान में स्थानान्तरित किया गया था। फर्नीचरों से सुसज्जित एक बड़ा-सा कमरा उनको रहने के लिए दिया गया था। ब्रह्मचारीगण उनके कमरे को सजा रहे थे। उसी समय उन्होंने कहा : अभी मेरे व्यवहार के लिए बिछावन, कुर्सी, टेबुल आदि कितनी सारी चीजों को देखते हो, परन्तु मुझे उन दिनों की बात याद आती है जब मैं संघ में प्रवेश करने के पहले सेना में कार्यरत था। वर्मा के एक सघन वन में हमलोग थे। जमीन पर सोना कष्टदायक था। इसलिए मौका मिलते ही हमलोग कैम्प की टेबुलों पर सो जाते थे। एक रात एक अंग्रेज कैप्टन आकर हमलोगों को डाँटने लगे : 'मैंने

बारम्बार तुमलोगों को टेबुल पर सोने से मना किया है न ?' हमलोग शीघ्रता से नीचे उतर गये। और अब देखो, मेरे लिए इतने बृहत् पैमाने पर प्रबन्ध किये गये हैं।

जबतक वे शारीरिक रूप से सक्षम थे, वे किसी से अपनी व्यक्तिगत सेवा नहीं कराते थे। कोई व्यक्ति, यहाँ तक की कोई ब्रह्मचारी भी, यदि उनकी कोई छोटी सी भी सेवा कर देता तो वे उसे धन्यवाद देते थे।

संघ से प्राप्त सुविधाओं के बदले कुछ न कुछ प्रतिदान देने के लिए वे सदा प्रयत्नरत रहते थे। इसीलिए वे कभी भी अनावश्यक कार्यों में अपना समय बरबाद नहीं करते थे। उनके द्वारा लिखित पुस्तकें संघ के लिए ही हैं एवं उन पुस्तकों से प्राप्त आय संघ को ही जाती है। अपने जीवन भर उन्होंने इस सिद्धान्त का पालन किया था।

सन् १९७९ से स्वामी गंभीरानन्द जी की भूमिका बदल गयी। संघ के महाध्यक्ष एवं सन् १९८५ से संघाध्यक्ष के रूप में भक्तों को मंत्रदीक्षा देना तथा उनकी आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूर्ण करना ही उनका प्रधान कार्य था। इस क्षेत्र में भी उन्होंने अपना सर्वश्रेष्ठ वितरित किया। वे अपने शिष्यों के कल्याण के लिए सदा उत्सुक रहते थे। इसके फलस्वरूप उनका चरित्र एक महान धर्माध्यक्ष के रूप में परिस्फुटित हुआ था।

स्वामी गम्भीरानन्दजी की स्मृति

—स्वामी आत्मारामानन्द
बेलुड़ मठ

[विवेक शिखा के इस विशेषांक के लिए अद्वैत आश्रम, मायावती से स्वामी आत्मारामानन्द जी महाराज के द्वारा अंग्रेजी में लिखित विशेष संस्मरणात्मक निबन्ध का हिन्दी रूपान्तर यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। रूपान्तरकार हैं डॉ० केदार नाथ लाभ।]

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—'धर्म अनुभूति का नाम है।' और यह अनुभूति सदैव वैयक्तिक है, जिसे व्यक्ति अपने अंतःकरण में सीधे और असंदिग्ध रूप से उपलब्ध करता है।

कुछ ऐसे आध्यात्मिक पुरुष होते हैं जो अपनी आन्तरिक उपलब्धियों को इस खूबी से छिपा लेते हैं कि दूसरे लोग उनकी महानता को मापने में असमर्थ होते हैं। वे इन्हें इसलिए नहीं गुप्त रखते कि वे इन्हें बाँटना नहीं चाहते, बल्कि इसलिए कि वे ईश्वरीय उपहारों को जिस-तिस के सामने फेंक देना नहीं चाहते। वे गुरु का स्थान ग्रहण नहीं करना चाहते, क्योंकि वे भली भाँति जानते होते हैं कि एकमात्र ईश्वर ही परम गुरु हैं जो जानते हैं कि किस व्यक्ति को कैसा पथ-प्रदर्शन करना चाहिए। वे (आध्यात्मिक पुरुष) तबतक उपदेश नहीं देंगे जबतक वे पूरी तरह निश्चित नहीं हो जायेंगे कि ईश्वर उनसे उपदेश दिलाना चाहते हैं। दूसरा कारण यह है कि अधिकांश लोग दूसरे व्यक्ति से उनकी आध्यात्मिक अनुभूतियों के विषय में अधिकतर निरर्थक कौतूहलवश पूछते हैं, बाद में गप्पें लड़ाने के लिए तथा दूसरों के सामने डींग मारते हुए यह दिखाने के लिए कि वे महान् और धार्मिक सत्पुरुषों से परिचित हैं। परन्तु, वे कभी भी किसी कथन को व्यवहार में कार्यान्वित नहीं करते। बस, केवल बातें और बातें। और इस तरह वे अपने को

धोखा देते हैं कि वे धर्मप्राण व्यक्ति हैं। तीसरी बात यह है कि जो स्वयं साधना में काफी आगे बढ़े हुए नहीं हैं तथा जिन्हें सम्यक् विवेक नहीं है, ऐसे लोगों को आध्यात्मिक अनुभूतियों का कितना अंश समझाया जा सकता है!

श्रीरामकृष्ण ने इन अनात्मशंसी व्यक्तियों की तुलना उस 'विशाल झील से की है जो हाथी के नहाने पर भी किंचित् अशान्त नहीं होता।' स्वामी गंभीरानन्द जी इसी वर्ग के महापुरुष थे। वर्षों तक उनके सान्निध्य में रहने पर भी, कोई भी विश्वासपूर्वक यह नहीं कह सकता है कि उसने उन्हें यथेष्ट रूप से समझा है। केवल उनके गुरु, महापुरुष स्वामी शिवानन्दजी ने उनका सही मूल्यांकन किया था। महापुरुष महाराज ने उनकी ब्रह्मचर्य-दीक्षा के उपरान्त उनका नाम 'सौम्यचैतन्य' और उनकी संन्यास-दीक्षा के उपरान्त उनका नाम 'गम्भीरानन्द' रखा था। छान्दोग्य उपनिषद् में उल्लेखित जावाल-सत्यकाम को उनके गुरु, जिनकी शिक्षा-प्राप्त कर वे ब्रह्मज्ञ हुए थे, उन्हे स्नेह से 'सौम्य' कहकर सम्बोधित किया करते थे। और जहाँ तक उनके संन्यास-नाम 'गम्भीर' का प्रश्न है, वे वस्तुतः शान्त-प्रशान्त थे — अधिकतर गम्भीर चिन्तन में निमग्न और ऊपरी तौर से अगम्य। यहाँ मायावती में बैठकर गम्भीर महाराज का स्मरण करते हुए, कुछ अंशों में उनकी तुलना मैं इन हिमाच्छादित पर्वतों से कर सकता हूँ। इन पर्वतों के अधिक अंश अगम्य, रहस्यमय, प्रशान्त, निर्मल श्वेत और प्रेरणास्पद हैं। और तब भी, सभी लोगों के मंगल के लिए वे शाश्वत नदियाँ प्रवाहित करते हैं।

गम्भीरानन्दजी महाराज ने अपने संन्यास-जीवन का शुभारम्भ १९२३ ई० में देवघर से किया था। उन दिनों आज का विख्यात शैक्षणिक संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर—अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था। उन्हीं दिनों महापुरुष महाराज पावन वैधनाथधाम के तीर्थाटन के क्रम में वहाँ गये। श्रीरामकृष्ण के अन्यतम शिष्य के शुभागमन के अवसर पर विद्यापीठ के प्रांगण में जब आनन्दोत्सव मनाया जा रहा था और जब हर व्यक्ति बाहर आनन्दोल्लास में व्यस्त था, उस समय एक ब्रह्मचारी चुपचाप सब्जी काटते हुए, अपने सेवा-कार्य से पूर्णतया सन्तुष्ट, पाकशाला में व्यस्त था। महापुरुषजी, जो उस रास्ते से गुजर रहे थे, कुछ देर वहाँ खड़े रहे और कहा, 'कालान्तर में एक महान् शक्ति यहाँ प्रकट होगी।' 'महाराज, "यहाँ" कहने में महापुरुष महाराज का क्या आशय था?'— दशकों बाद, गम्भीर महाराज से, जब वे रामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष थे, उनकी बातें सुनने वाले भक्तों में से किसी एक भक्त ने पूछा। केवल एकबार उन्होंने यह उत्तर दिया, "यहाँ" से उनका तात्पर्य मुझसे था।' यद्यपि बाद में भक्तों के विभिन्न समूहों को अपने गुरु के साथ अपना सम्बन्ध बताने के क्रम में उन्होंने देवघर की इस घटना का कई बार वर्णन किया था, लेकिन उन्होंने सदैव "यहाँ" की व्याख्या विद्यापीठ के रूप में की, जो आज वस्तुतः एक विशाल एवं विशिष्ट संस्था के रूप में विकसित हो गया है।

देवघर में रहते समय, सौम्यचैतन्य शिक्षक, प्रबन्धक, भंडारी, निधि-संग्रहकर्त्ता, सचिव, सब कुछ अपने आप में थे। उनके छात्र उन्हें और देवघर में उनके रहने के काल को एक परम स्मरणीय के रूप में स्मरण करते हैं। कुछ वर्ष पूर्व, मद्रास में हमलोगों की शैक्षणिक संस्थाओं में से एक में, गम्भीरानन्द जी ने यह संकेत दिया कि देवघर में कार्य करने का उनका क्या रवैया रहा होगा। उन्होंने कहा, 'प्रेम, केवल प्रेम, ही छात्रों को शिक्षा देने का सर्वोत्तम माध्यम है। छात्रों की मातृभाषा उनकी शिक्षा का माध्यम हो या नहीं, इस पर सारी बहसें गौण महत्व रखती हैं।' एक तालाब से अपने छात्रों के स्नान के लिए पानी भरते समय वे घायल हो गये थे। देवघर में इन सारे दायित्वों का वहन करते हुए, और बाद में जब उन्हें संघ के महत्तर प्रशासनिक दायित्वों को वहन करना पड़ा, उनके व्यक्तित्व के दूसरे पक्ष का उद्घाटन हुआ— अपने शिष्यों, विशेषकर वेदान्त के प्रति उनमें गम्भीर अनुराग का उद्रेक हुआ। विभिन्न वैदिक

स्तोत्रों एवं मन्त्रों आदि (स्तव कुसुमांजलि, बंगला अनुवाद सहित) तथा प्रमुख उपनिषदों के शंकराचार्य कृत भाष्यों के उनके द्वारा किये गये श्रेष्ठ अनुवाद उनके गौरव के अनुरूप हैं। उनके सभी अनुवाद अपनी स्पष्टता, संक्षिप्तता, और सबसे बढ़कर मूल के प्रति विश्वसनीयता की दृष्टि से विलक्षण हैं।

निस्सन्देह वे अद्वैती थे। तथापि उनके भीतर निश्चय ही भक्ति की एक सबल अन्तर्धारा बहती रहती थी जिसने उन्हें एक ऐसा अद्वैतवादी बना दिया था जिसके मूर्त्त रूप श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द थे। श्री माँ पर बंगला में लिखित उनकी जीवनी, 'श्री माँ सारदा' न केवल बंगला साहित्य की क्लासिकी या प्रतिष्ठित साहित्य है बल्कि श्री माँ के प्रति उनकी गम्भीर भक्ति की द्योतक भी है। जिस किसी ने उस पुस्तक को पढ़ा है, निरपवाद रूप से सब उसके जीवन वर्णन एवं गहन भक्ति भावों से अभिभूत हुए हैं। अनेक लोगों को लगा है कि वे श्रीमाँ के शिष्य थे और उन्हें वर्षों तक श्री माँ की निकटता से सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। १९८७ ई० के अक्टूबर या नवम्बर में एक महिला भक्त ने उनसे ऐसा ही कहा, और उन्होंने मृदुतापूर्वक उत्तर दिया, 'नहीं, मैं माँ का दीक्षित शिष्य नहीं हूँ। मुझे महापुरुष महाराज ने दीक्षा दी थी। मैंने माँ को अपने चर्मचक्षुओं से देखा तक नहीं है,' और थोड़ा रुक कर उन्होंने कहा, 'किन्तु मैंने उन्हें अपनी मुँदी आँखों से देखा है। मैं जानता हूँ कि वे सदैव मेरे साथ रहती हैं।' ऐसा लगा कि पूजनीय महाराज ने जो कहा उसे ठीक से वह महिला समझ नहीं सकी। उस समय वह उन्हें यह जनाने को विशेष उत्सुक थी कि उसने माँ पर रचित उनकी पुस्तक को पढ़ा है। कुछ महीनों बाद ऐसी ही एक घटना घटी जब पूजनीय महाराज त्रिपुरा के अगरतला केन्द्र में थे। अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को भक्तों के सामने प्रकट करना महाराज जी के लिए एक नयी बात थी क्योंकि अक्सर वे मौन और गम्भीर रहा करते थे। वस्तुतः इस नये लक्षण को १९८५ ई० में उनके संघाध्यक्ष बनने के बाद ही हमलोगों ने लक्ष्य किया।

धीरे धीरे वे नरम, अधिक गम्य और प्रत्यक्षतः भक्तों के कल्याण के लिए अधिक चिन्तित होने लगे। भक्तगण अपने और अपने दुःखों, पारिवारिक समस्याओं आदि को उनके समक्ष व्यक्त करने लगे। स्वामी गम्भीरानन्द जी ने, जब तक वे संघ के महा सचिव थे, मुश्किल से ऐसी स्थिति को प्रत्यक्ष रूप से देखा था। संघ के सह-अध्यक्ष के रूप में भी उन्होंने भक्तों को अपनी सांसारिक समस्याएँ उनके सामने लाने को उत्साहित नहीं किया, बल्कि वे सहायता के लिए श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना करने के लिए ही कह दिया करते थे। और अब वे ही संघ-गुरु के रूप में समय मिलने पर उन भक्तों की बातें धैर्य पूर्वक सुना करते थे। वे तभी उन्हें परामर्श दिया करते थे जब वे निश्चित हो जाते थे कि वे उनके उपदेशों का कम से कम कुछ अंशों में भी पालन कर सकेंगे और वे मात्र चमत्कारी समाधान की खोज में नहीं आये हैं। वे ऐसे व्यक्ति को भी उपदेश नहीं दिया करते थे जो मात्र निरर्थक बातें करने और सुनने आया करता था। ऐसे लोग उनसे आशीर्वाद माँगते और वे कह दिया करते, 'हाँ, हाँ, मेरे आशीर्वाद सदैव हैं। किन्तु तुम्हें भी उठ खड़ा होना चाहिए और साधना करनी चाहिए और श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना करनी चाहिए।'

अपने आध्यात्मिक संधान में अद्वैती, और अपने आचरणों में निर्वैयक्तिक, गम्भीरानन्द जी महाराज उन्हें देखने और उनसे सीखने वालों के लिए एक बेसुध और आदर्श गुरु थे। उनका स्नेह गंभीर था, जिसकी मधुर शब्दों, पीठ थपथपाने और भौतिक उपहारों के द्वारा आसानी से अभिव्यक्ति नहीं हो सकती थी। जहाँ कहीं उन्होंने अनुशासन लागू किया, उसे संन्यासी जीवन के सिद्धान्तों और समग्र संघ के कल्याण को ध्यान में रखकर ही किया। अतः जिन्हें उन्होंने डाँटा-फटकारा उसकी कठोरता के प्रभाव को काल और आत्मनिरीक्षण ही मिटा सकेगा। अपने शरीर और मन पर उनका लगभग पूर्ण नियंत्रण था। कार्यालयीय सभाएँ, अक्सर की जाने वाली यात्राएँ, जलवायु के परिवर्तन आदि मुश्किल से जप आदि के उनके नियमित कार्यों को प्रभावित कर

पाते थे। उनके लिए समय बड़ा मूल्यवान था, इसलिए वे अनावश्यक बाधाओं या अनिर्धारित अव्यवस्थित कार्य को पसन्द नहीं करते थे। वे अपने दूरदर्शितापूर्ण शीघ्र निर्णयों के लिए विख्यात थे। वह कैसे संभव था? पहली बात यह थी कि वे, अपने संन्यास पूर्व जीवन के दिनों में भी, एक मेधावी छात्र थे। दूसरी बात, उनका जीवन पवित्र था। तीसरी बात, उनका मन तथ्यों के आधार पर कार्य करने में प्रशिक्षित था और कल्पना में विचरण नहीं करता था। चौथी बात, अपने संन्यस्त जीवन में व्यक्तियों की अपेक्षा सिद्धान्तों को पकड़े रहने के कारण उन्होंने वैयक्तिक पूर्वग्रहों, आकांक्षाओं और पक्षपातों से अपने मन को निश्चय ही मुक्त कर लिया होगा और अन्तिम बात यह कि उनके शुद्ध मन में विवेक की वाणी अवश्य ही सुस्पष्ट रहती होगी। किन्तु इसे सदा स्मरण रखना चाहिए कि वे तानाशाही प्रवृत्ति के नहीं थे। उन्होंने न्यासी परिषद् (Trustee-body) के सभी निर्णयों को अविरत स्वीकार किया। इस विषय में उन्होंने सदैव संघ की परम्परा को बनाये रखा और स्वयं महा अध्यक्ष होने के पूर्व, उन्होंने सदैव बिना किसी बहस के अध्यक्षों की इच्छाओं और निर्देशों का आदर किया। गम्भीर चिन्तन में निरत रहने के कारण वे असंगत विषयों पर असंयत और अस्पष्ट गपशप में कभी भाग नहीं लेते थे। अंतिम कुछ वर्षों में, जब उनके सहयोगी या अन्य स्वामीगण, जिनके साथ अपने प्रारंभिक दिनों में उनके सम्बन्ध निश्चय ही प्रेमपूर्ण रहे होंगे, या तो दूर के शाखा केन्द्रों में रह रहे थे या स्वर्गत हो गये थे, उन्होंने निश्चय ही ऐसे उपयुक्त व्यक्तियों के अभाव का अनुभव किया होगा जिनके साथ वे लाभप्रद ढंग से बातचीत और अपने विचारों का का आदान-प्रदान कर सकते थे। इसके लिए उन्होंने स्वयं को अधिक आत्मलीनता और जप और कुछ अधिक महत्वपूर्ण शास्त्रों के अनुवाद के द्वारा तैयार किया। शंकराचार्य के भाष्य सहित छान्दोग्य उपनिषद्, श्वेताश्वर उपनिषद् और भगवद्गीता तथा मधुसूदन सरस्वती की दीपिका सहित गीता के अंग्रेजी अनुवादों ने उनके सहाध्यक्ष होने के बाद के वर्षों को पूरित किये रखा। शांकर भाष्य के साथ ब्रह्मसूत्र का उनका अंग्रेजी अनुवाद कुछ विश्वविद्यालयों में पाठ्य ग्रंथ के रूप में प्रयुक्त होता है।

जब कभी उन्हें कुछ खास करने को नहीं होता, वे शान्तिपूर्वक बैठे हुए जप में लीन पाये जाते। उनकी महासमाधि से दो माह पूर्व, अक्तूबर ९८८ में, उनके एक घनिष्ठ जानकार और परम भक्त दम्पत्ति उनके दर्शनार्थ आये। सामान्य प्रणाम आदि के बाद उस भद्र पुरुष ने पूजनीय महाराज से उनकी १९७६ में पावन अमरनाथ की यात्रा और वहाँ हुए उनको श्रीरामकृष्ण के दिव्य दर्शन की खबर के सम्बन्ध में पूछने का साहस किया। पूर्व में कई अवसरों पर, जब हमलोगों या अन्य भक्तों ने उनसे इस विषय में पूछा था, उन्होंने यह कहते हुए "आह, वह दिव्य दर्शन? वह कुछ नहीं है। तुम जानते हो, मेरे उदर में वायु विकार था (और उससे निश्चय ही दृष्टिभ्रम हो गया होगा)।" सारी बातों को टाल दिया था। फिर भी, इस बार, उन्होंने अपना हृदय खोल दिया। जब मैं सुनने के लिए भीतर गया, वे कह रहे थे "नहीं, मैंने शिवलिंग का आलिंगन नहीं किया। पूजा करने के बाद ज्यों ही मैं वापस लौटने को खड़ा हो रहा था, मैंने श्रीरामकृष्ण को वहाँ खड़ा देखा (शिवलिंग के स्थान पर?)"

भक्त—ओ, यह बात है। हमलोगों ने सुना था कि जब आप अमरनाथ की गुफा से बाहर आये, आपका मुख मंडल दीप्तिपूर्ण था और अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी।

महिला—महाराज, क्या आपने उसके बाद भी श्रीरामकृष्ण को देखा है।

महाराज—हाँ, बैठे हुए या लेटे हुए, अपनी मुँदी आँखों से मैंने श्रीरामकृष्ण के ज्योतिर्मय स्वरूप को देखा है। ऐसा नहीं कि मैं उस समय जप कर रहा था अथवा दिव्य दर्शन के लिए प्रार्थना कर रहा था। वे अचानक उपस्थित हो गये।

महिला महाराज, आप उन्हें किस रूप में देखते हैं ?

महाराज -ठीक जिस रूप में हमलोग उन्हें अपने उपासना-गृह में देखते हैं, बैठे हुए।

महिला महाराज, क्या आपने श्री माँ को भी देखा है ?

महाराज -ओ, हाँ। वे भी कभी-कभी ज्योतिर्मय रूप में आ उपस्थित होती है। जैसा मैंने कहा है, ऐसा नहीं कि उस समय मैं उनके दिव्य दर्शन की कामना कर रहा था। मैं जानता हूँ, वे सदैव मेरे साथ हैं।

महिला- आप उन्हें किस प्रकार देखते हैं, महाराज ?

महाराज ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार बैठी हुई वे उस चित्र में दिखायी पड़ती हैं जिनकी हम पूजा करते हैं।

महिला—क्या आप उन्हें अगल-बगल देखते हैं ?

महाराज—नहीं। जब मैं श्रीरामकृष्ण को देखता हूँ, श्री माँ तब वहाँ नहीं रहती हैं, और जब श्रीमाँ आती हैं, तब श्रीरामकृष्ण नहीं रहते।

महिला—महाराज, क्या आपने स्वामीजी को भी देखा है ?

इस प्रश्न पर पूजनीय महाराज कुछ लज्जित से दिखाई पड़ने लगे और कहा, 'ओह, इन सब के बारे में बोलने से क्या लाभ है ? इस प्रश्न को जाने दो।'

यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह गया, किन्तु उस पवित्र परिवेश में उपस्थित अन्य लोगों के समक्ष उत्तर स्पष्ट था।

कई वर्षों बाद, १९८० ई० में, चण्डीगढ़ केन्द्र को देखने आने के अवसर पर उन्होंने "श्रीरामकृष्ण के अनुसार आध्यात्मिक जीवन" विषय पर प्रवचन दिया था। प्रवचन के उपरान्त, जब वे अपने कमरे में लौटे, किसी ने पूछा - "महाराज, आपने साधना कैसे की ?"

महाराज—निस्सन्देह मैं जप किया करता था; संभवतः दिन भर में २ से ३ हजार तक। कभी-कभी, अवकाश के दिनों में लगभग १० हजार। किन्तु मैं जप को मुख्य स्थान नहीं दे रहा था। मैं गीता के इस श्लोक पर ध्यान किया करता था—

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥ (/३)

(अर्थात् जो व्यक्ति न किसी से द्वेष करता है और न किसी की आकांक्षा करता है उस (निष्काम कर्मयोगी) को ही सदा संन्यासी समझना चाहिए क्योंकि, हे महाबाहो अर्जुन ! रागद्वेष आदि द्वन्द्वों से रहित हुआ पुरुष सुख पूर्वक संसार रूपी बन्धन से मुक्त हो जाता है)।

प्रश्नकर्त्ता - किन्तु, महाराज, यह तो एक अमूर्त अवैयक्तिक आदर्श है। आप श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ के मूर्त (वैयक्तिक) दिव्य दर्शन से इसकी संगति कैसे बैठा सकते हैं ?

बिना एक क्षण की हिचकिचाहट के पूजनीय महाराज ने उत्तर दिया—

'क्यों ? वे तो उसी (द्वैत से मुक्ति के आदर्श) के मूर्त या साकार रूप हैं।"

भक्तों ने रामकृष्ण संघ के सहाध्यक्षों में से एक, स्वामी निर्वाणानन्द जी के विषय में अवश्य ही सुना होगा जो प्रायः ५ वर्ष पूर्व रामकृष्ण लोकवासी हो गये। वे स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज के प्रिय सेवक और शिष्य थे। गुरु ने इस शिष्य के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की थी - "मृत्यु के समय इसे निर्वाण की प्राप्ति होगी।" उनके सम्बन्ध में एक रोचक कथा है। अपनी महासमाधि के लगभग एक वर्ष पहले एक दिन दोपहर के आराम के बाद और दिनों की अपेक्षा पहले ही उन्हें जग जाना पड़ा। वे उठ बैठे थे और अपने तई एक गीत गा रहे थे जो कुछ-कुछ इस प्रकार है—

....

नदिया के निमाई ने पुकार दी है :
आओ, आओ, तुम—
जो उस पार जाने के आकांक्षी हो !"

एकाएक वे अपने ब्रह्मचारी-सेवक की ओर मुड़े और पूछा, "तुम क्या कहते हो, क्या तुम 'उस पार' जाना चाहोगे ?" भौंचक होकर, घबराते हुए सेवक ने विनम्रता पूर्वक उत्तर दिया—'हाँ, महाराज, आपकी कृपा से।' कुछ क्षण मौन रहने के उपरान्त श्रद्धेय स्वामी ने अपनी दायीं भुजा ऊपर उठाकर और एक उँगली को हिलाते हुए कहा—"देखो वह, गंभीरानन्द, 'उस पार' जायगा !"

स्वामी गम्भीरानन्द ने उस प्रकार का संन्यासी होने के लिए अपने गृह का त्याग किया था जिस प्रकार का संन्यासी श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द बनाना चाहते थे, जिसका आदर्श होगा "आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।" ६५ वर्षों के अनवरत आत्मानुशासन के उपरान्त, निश्चय ही वे इस आदर्श का अभ्यास करने में सफल हुए थे। और इस प्रकार हमलोगों ने श्रीरामकृष्ण की एक और सन्तान को ब्रह्मलीन होते हुए देखा है।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥
(गीता २।७१)

अर्थात् जो पुरुष समस्त कामनाओं को त्यागकर स्पृहा, ममता (मैं और मेरा के विचार) और अहंकार से रहित होकर आचरण करता है वह शान्ति अर्थात् निर्वाण को प्राप्त होता है।

दिव्य स्मृति

स्वामी अच्युतानन्द
बेलुड़ मठ।

आज से करीब ४० वर्ष पहले की बात है। बेलुड़ मठ के एक शाखा केन्द्र में रहते थे स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज। वे श्री श्रीमाँ के शिष्य थे। आश्रम में उत्सव होनेवाला है। अतः अध्यक्ष महोदय ने गायाबती के अध्यक्ष स्वामी गंभीरानन्दजी को उस अवसर पर व्याख्यान देने के लिए निमंत्रित किया। वे आये तथा अपने सारगर्भित एवं प्रभावशाली भाषण से उन्होंने सबको मुग्ध कर दिया। कठिन से कठिन विषय को शास्त्रों के उद्धरणों की सहायता से इतने सहज बनाकर वे श्रोताओं के समक्ष रखते थे कि ऐसा लगता था कि इससे अच्छा और कोई बोल ही नहीं सकता है। यही कारण है कि उनके भाषण को सुनने के लिए सभी उत्सुक रहते थे।

उस समय कुछ युवक नियमित रूप से आश्रम आते थे। उनमें से एक को बुलाकर स्वामी प्रेमेशानन्दजी ने कहा : "स्वामी गंभीरानन्द जी को तुम अपने घर निमंत्रित करके ले जाओ।" वहाँ ऐसी प्रथा थी कि जो साधु बाहर से आते थे, उन्हें स्थानीय भक्त निमंत्रित किया करते थे। उस युवक ने गंभीरानन्दजी से अपनी प्रार्थना निवेदित की। वे हँसते हुए बोले : "क्या मुझे आश्रम में खाना नहीं मिलेगा ?" अंत में वे उसके घर गये थे। उस युवक के माता-पिता श्रीरामकृष्ण के भक्त थे एवं उनके यहाँ एक छोटा सा पूजा-गृह भी था। पूजा-गृह आदि को देखकर स्वामी गम्भीरानन्द जी बहुत आनन्दित हुए। भोजन के बाद युवक की माँ ने उन्हें 'जयवटिका' नामक मुख-शुद्धि खाने को दिया। वह

उन्हें बहुत ही अच्छा लगा था। वह भुक्ति-मुक्ति उस युवक की माँ स्वयं तैयार करती थीं। पहले उस युवक की धारणा थी कि गम्भीरानन्द महाराज बहुत ही गम्भीर व्यक्ति हैं, परन्तु अपने यहाँ उनके आनन्दमय व्यवहार को देखकर उसकी यह धारणा बदल गयी।

बहुत वर्षों के बाद वही युवक एक बार बेलुड़ मठ आया। तब पूजनीय गम्भीरानन्द जी महाराज सह-सचिव बन चुके थे तथा बेलुड़ मठ में ही रहते थे। युवक उनको प्रणाम करने गया। उसे देखते ही वे बोल उठे: "अरे, मेरी जयवटिका कहाँ है?" उस युवक को वह बात याद भी नहीं थी, परन्तु उन्होंने ठीक-ठीक याद रखी थी। यह घटना उनकी अद्भुत स्मरण-शक्ति एवं स्वभाव की सरसता की द्योतक है।

स्वामी गम्भीरानन्द जी के चरित्र की एक विशेषता थी कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी यदि युक्ति की सहायता से उन्हें कुछ कहता, तो वे उसे सहर्ष स्वीकार करते थे।

संघाध्यक्ष होने के बाद जब वे पहली बार काशी गये थे, तब मैं वहीं पर था। वहाँ स्वामी अपूर्वानन्दजी महाराज को जाकर उन्होंने सादर प्रणाम किया था। दोनों प्रायः समवयसी थे परन्तु अपूर्वानन्द जी महाराज का संन्यास पहले हुआ था। इसके बाद वे वयोवृद्ध साधु स्वामी सत्स्वरूपानन्दजी से मिलने गये। पूजनीय गम्भीरानन्द जी एवं सत्स्वरूपानन्द जी जब आपस में बातें करने लगे तब ऐसा लगा मानो दो बालक आपस में बातें कर रहे हों। उनके बीच हुए बातचीत के कुछ अंश नीचे हैं--

ग०—महाराज, आप कैसे हैं?

स०—भाई, माँ ने जैसा रखा है। (स्वामी सत्स्वरूपानन्दजी महाराज श्री श्रीमाँ के शिष्य थे)

ग०—देखता हूँ, माँ ने आपको ठीक ही रखा है।

स०—नहीं भाई, माँ ने कष्ट में रखा है।

ग०—कष्ट में क्यों? आप तो कितने आनन्द में हैं। (मजाक करते हुए) खाते-पीते हैं और केवल आराम करते हैं, कोई कार्य-कर्म नहीं हैं।

इस प्रकार उनलोगों की मधुर बातचीत बहुत देर तक चलती रही।

अपने काशी अवस्थान काल में एक दिन उन्होंने मुझे शिव का ध्यान मंत्र सुनाने को कहा था। मैंने निम्नलिखित ध्यान-मंत्र आवृत्ति करके उन्हें सुनाया था—

"ओम् ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारु चन्द्रावतंसं....." बहुत ही शांत एवं गंभीर होकर उन्होंने यह स्तोत्र सुना। इसकी आवृत्ति करके मैंने कहा, "महाराज, काशी विश्वनाथ का एक बहुत अच्छा ध्यान-मंत्र हैं।" उन्होंने कहा: "सुनाओ, सुनाओ, वह भी सुनाओ।" मैंने 'कर्पूर गौरं करुणावतारं संसार-सारं भुजगेन्द्रहारं ....." स्तोत्र का पाठ करके उन्हें सुनाया। स्तोत्र सुनकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए थे।

एक दिन वे काशी विश्वनाथ का दर्शन करने को गये। साथ में और भी कई साधु-ब्रह्मचारी थे। उन्हें बड़ी सावधानी से वहाँ ले जाया गया। वहाँ उन्होंने बाबा विश्वनाथ की अपने हाथों से पूजा की थी। वे अपनी आँखों से स्पष्ट नहीं देख पाते थे। इसलिए मैंने उनका हाथ पकड़-पकड़ कर पूजा करवायी थी। पूजा समाप्त होने के बाद मैंने एक बार पुष्पांजलि दिलवायी। इसके बाद अपनी विशेष इच्छा से दो बार और उन्होंने पुष्पांजलि दी। फिर उन्होंने बाबा विश्वनाथ का स्पर्श किया। उस समय वे भाव-विभोर थे। मानो सारी दुनिया को भूलकर काशी विश्वनाथ के साथ एक हो गये थे। भावातिरेक के कारण उनके हाथ काँप रहे थे। जो माला उन्होंने बाबा विश्वनाथ को चढ़ायी थी, वही माला उठाकर एक पंडे ने उनके गले में डाल दी और वे भोले नाथ होकर बैठे रहे। वह बहुत ही देवदुर्लभ दृश्य था। पूजा समाप्त कर हमलोग सानन्द आश्रम लौटे। वे वेदान्तिक थे परन्तु उनके भीतर प्रवाहित होने वाली

भक्ति की फल्गु धारा वहाँ पर दिखायी दी थी।

भक्तों के ऊपर स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज की अहैतुकी कृपा संबंधी दो घटनाओं का उल्लेख कर मैं इस स्मृति को समाप्त करूँगा। एक राजनैतिक नेता थे। धर्म में उनका कोई विश्वास नहीं था। दीक्षा आदि तो उन्हें एकदम पसंद नहीं थी। एक दिन मैंने उनसे कहा, "एकबार स्वामी गम्भीरानन्दजी से मिलकर देखिए।" परन्तु वे राजी नहीं हुए। तब मैंने पूछा, "अच्छा आपका घर तो 'उद्बोधन' (माँ के भवन) के पास है। क्या आप वहाँ जाते हैं ?" उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, मैं वहाँ जाता हूँ। माँ मुझे अच्छी लगती हैं।" इसपर मैंने कहा, "तो आप स्वामी गम्भीरानन्दजी से मिलकर यही कहिए कि माँ मुझे अच्छी लगती हैं।" वे पूजनीय महाराज से मिले तथा बाद में उनके अन्दर दीक्षा लेने की इच्छा भी जागृत हुई। पूजनीय महाराज उनको दीक्षा देने के लिए राजी हो गये। काशीपुर में श्री श्रीमाँ के कमरे में बैठकर केवल उसी को दीक्षा दी। वह अपने इच्छित मंत्र को पाकर धन्य हो गया। इसके बाद से उनका जीवन ही बदल गया। राजनीति आदि को छोड़कर ठाकुर, माँ, स्वामीजी के प्रति समर्पित हो गये।

एक और बड़ी ही मजेदार घटना है। कलकत्ता हाइकोर्ट का एक बड़ा ऑफिसर मेरा घनिष्ठ बन्धु था। वह बहुत ही तीव्र बुद्धि सम्पन्न था परन्तु थोड़ा अज्ञेयवादी था। मैंने उससे भी कहा कि तुम स्वामी गम्भीरानन्दजी से मिलकर उनसे मंत्र-दीक्षा ग्रहण करो। उन्होंने साफ इन्कार कर दिया और मजाक करते हुए कहा, "मैं तुमको ही गुरु मानता हूँ, और किसी को नहीं।" मैंने कहा, "जब तुम मुझे गुरु मानते हो तो मैं जो कहूँगा उसे सुनोगे।" उन्होंने कहा, "हाँ, तुम्हारा कहना मानूँगा।" तब मैंने कहा, "तो मेरा आदेश है कि तुम गम्भीरानन्दजी से मिलो।" इस पर वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। बाद में मैंने उसे स्वामी गम्भीरानन्दजी लिखित उपनिषद् आदि ग्रन्थ पढ़ने को दिया।

वे पुस्तकें उन्हें बहुत ही अच्छी लगीं। अंत में, वह दीक्षा लेने को तैयार हुआ। मैंने एक पत्र लिखकर उसे पूजनीय गम्भीरानन्दजी के पास भेजा। मैंने महाराज को उसके स्वभावादि के संबंध में भी विस्तार से लिखा था। महाराज ने सब कुछ जानकर उनपर कृपा की और वह धन्य हो गया। दीक्षा के समय मैं भी उसके साथ गया था। दीक्षा हो जाने के बाद मैंने उसे महाराज की सेवा करने को कहा, उसने महाराज से पूछा, 'महाराज, आपकी सेवा करूँ ?" महाराज ने साथ-साथ अपने दोनों पैर बढ़ा दिये। कुछ देर के बाद महाराज अपने बिछावन पर आकर लेट गये। उसने फिर पूछा, "महाराज, सेवा करूँ।" महाराज ने कहा, "हाँ, हाँ, करो।" सेवा करते-करते उसने पूछा, "महाराज, आपको कौन सी चीज अच्छी लगती है।" महाराज ने कहा—"कैटबेरी चॉकलेट।" तुरत बाजार जाकर उसने 'कैटबेरी चॉकलेट' लाकर महाराज को दिया। उसका नाम 'नारायण' था। इसके बाद वह बीच-बीच में महाराज के दर्शन करने आता। सेवक महाराज जब पूज्य गंभीर महाराज से कहते, "महाराज, नारायण बाबू आये हैं।" यह सुनते ही महाराज बोल उठते, "क्या रे, मेरा कैटबेरी चॉकलेट कहाँ है ?" इस तरह अपने शिष्यों के प्रति उनकी अपार करुणा एवं स्नेह था।

एक आदर्श संन्यासी

स्वामी अमरेशानन्द
बेलुड़ मठ

स्वामी गम्भीनन्दजी महाराज सब समय एवं सभी क्षेत्रों में संन्यास के आदर्श को अपने सामने रखकर चलते थे। वैराग्य एवं अपरिग्रह उनके भूषण थे। वे कहते, त्याग के बिना सेवा कार्य भी ठीक-ठीक नहीं हो सकता है। जरूरत से ज्यादा चीज वे अपने पास कभी नहीं रखते थे। कोई व्यक्ति यदि कुछ लाता तो उसमें से थोड़ा सा रखकर बाकी बाँट देने के लिए कहते। जब कोई खाने की कोई वस्तु लाता तो कहते, बेल पकने से कौआ को क्या लाभ—अर्थात् मैं तो उसे ग्रहण नहीं कर सकूँगा। एक दिन एक व्यक्ति उनके लिए घर से पूड़ी एवं रस मलाई तैयार करके ले आया। देखते ही वे बिगड़ पड़े—यहाँ क्यों लाये हो? जाओ मठ के मैनेजर के पास ले जाओ। आज से इधर कुछ नहीं लाना।

अपने आप जो आता था उसी से वे संतुष्ट रहते थे। यदृच्छा लाभ संतुष्टः। किसी के सामने अपने लिए अथवा संघ के लिए वे हाथ नहीं फैलाते थे।

स्वामी गम्भीरानन्द जी बहुत समय-निष्ठ थे। सभी कार्य ठीक समय पर करते थे। जब वे महासचिव थे तब प्रतिदिन प्रातः काल डायरी लिखते थे। एक दिन मैं किसी कार्यवश उनके पास गया। उन्होंने कहा: 'ठहरो, पहले डायरी लिख लेने दो तब कुछ होगा।' और एक समय की बात है। मेरी लुईस वर्क द्वारा लिखित 'स्वामी विवेकानन्द—न्यू डिस्कवरी' नामक पुस्तक के द्वितीय खण्ड का प्रूफ मुझे उनके सामने पढ़ना था। मैंने उनके पास जाकर यह बात बतायी। उन्होंने कहा: 'ठीक है, सुबह साढ़े नौ बजे एवं अपरह्न में ढाई बजे आ जाना। उस समय मैं उनको प्रूफ पढ़कर सुनाता था। वे एक मिनट भी कम अथवा अधिक समय नहीं देते थे। उस बीच यदि कोई आ जाता तो वे कहते: 'अभी ठहरो, अभी दूसरा कार्य कर रहा हूँ।' यहाँ तक कि किसी न्यासी (Trustee) के आने पर भी वे उस कार्य को नहीं छोड़ते थे तथा उनसे कहते: 'मैंने उसे समय दिया है। उसका समय क्यों बरबाद करूँ।' यदि कोई कहता कि बहुत आवश्यक कार्य है तो वे कहते: 'ठीक है, आधे घंटे के बाद होगा।' एक बार एकनाथ रानाडे महोदय बेलुड़ मठ आये हुए थे। परम पूजनीय वीरेश्वरानन्दजी महाराज ने मुझसे कहा कि इन्हें गंभीर महाराज के पास ले जाओ। मैंने गंभीर महाराज से यह बात कही। वे बोले: 'देखो, जाकर पहले उनके भोजन की व्यवस्था करो, फिर उन्हें मेरे पास ले आओ। परन्तु उनसे कहना कि केवल पाँच मिनट ही मैं उनसे वार्तालाप कर सकूँगा।' तथा उन्होंने वैसा ही किया।

उस समय (जब गंभीर महाराज महासचिव थे) अपराह्न की चाय मैं ही ला दिया करता था। एकबार ऐसा हुआ कि चाय बनाते समय चीनी के बदले भूल से नमक ही उसमें डाल दिया गया। वही चाय लाकर मैंने सर्वप्रथम गंभीर महाराज को दी तथा उसके बाद अन्य लोगों को दी। चाय पीते ही सभी मुझ पर दोषारोपण करने लगे कि मैंने ही जान-बूझकर चाय लाते समय उसमें नमक मिला दिया है। जब मैंने गंभीर महाराज से पूछा तो उन्होंने शांत भाव से कहा: 'अरे, चाय तो प्रतिदिन पीता हूँ। आज भूल से चीनी के बदले नमक ही मिला दिया है तो इससे क्या हुआ?' मैं उनके उत्तर को सुनकर अवाक् हो गया। कैसे निर्विकार पुरुष थे वे! इस संबंध में एक और घटना याद आती है। उस समय मठ में पानी का अभाव

था। इसीलिए मैं उनके लिए प्रतिदिन रात को दो बाल्टी पानी रख देता। एक दिन पानी रखना भूल गया। सुबह में मंगलारति के बाद देखा, गंभीर महाराज गमछा पहने हुए गंगाघाट से लौट रहे हैं। तभी मुझे ख्याल आया कि रात को मैं पानी रखना भूल गया था। परन्तु वे कुछ नहीं बोले। चुपचाप गंगा में जाकर हाथ-मुंह धोकर एवं स्नान करके आ गये। बाद में उन्होंने कहा : 'एक दिन पानी रखना भूल गया। उसमें कोई बात नहीं है।'

उन्हें जब कोई कुछ देता तो उसमें से थोड़ा रखकर बाकी बिना किसी भेदभाव के सबों के बीच बाँट देते। उदाहरण स्वरूप, जब कोई उन्हें ब्लेड का पैकेट देता तो वे एक ब्लेड रखकर बाकी दे देते और कहते जो-जो स्वयं दाढ़ी बनाता है उनमें बाँट दो। जब वे उद्बोधन अथवा अन्यत्र कहीं जाते तो पहले ही सूचना दे देते, जिसको-जिसको मेरे साथ जाना है सब गाड़ी के पास ठीक समय पर आ जाना। सभी ठीक समय पर उनकी गाड़ी के पास आ जाते थे। स्वयं गाड़ी में चढ़ने के पहले वे कहते, पहले तुमलोग गाड़ी में चढ़ो। सबके बाद स्वयं वे गाड़ी में बैठते थे। कौन कहाँ काम करता है, संन्यासी है या ब्रह्मचारी इत्यादि का वे ख्याल नहीं करते थे, केवल मठ का साधु होने से ही हुआ। एक नवागत ब्रह्मचारी भी उनके पास निर्भय होकर बैठ सकता था। उनमें कोई भेद-दृष्टि नहीं थी।

वे प्रेमिक भी थे। जैसे नारियल ऊपर से तो बहुत कठोर होता है, किन्तु भीतर से मुलायम, उसी तरह पूज्य गम्भीर महाराज के भीतर जो प्रवेश कर पाता था उसे उनका संग बहुत अच्छा लगता था। रात को भोजनोपरांत वे कुछ देर तक बैठते थे। उस समय थोड़ी बहुत बातचीत होती थी। साधु-जीवन में सहायक बातें हुआ करती थीं। कभी-कभी जब वे हल्की मनःस्थिति में रहते थे तब हँसी-मजाक भी करते थे। वे उस समय रामकृष्ण मठ एवं मिशन के महासचिव थे। अतएव प्रायः हर खबर उनके पास पहुँचती थी। किन्तु पंकज महाराज उन्हें कहते —"महाराज, एक खबर जानते हैं?" जब महाराज पूछते —"कौन सी खबर?" तब वे कहने लगते कि अमुक ने ऐसा किया, अमुक जगह पर ऐसा हुआ, यहाँ पर वैसी गड़बड़ी हुई इत्यादि। सब सुन कर पूज्य गम्भीर महाराज कहते "सचमुच ऐसा हुआ? तो अब क्या करना चाहिए?" वे इस प्रकार बोलते मानो उन्हें पहले से कुछ पता ही नहीं है। इसी प्रकार कई तरह के हँसी मजाक होते थे। फुर्सत के क्षणों में वे गुनगुनाकर भजन भी गाते थे तथा कभी-कभी पूछते कि अमुक भजन का स्वर क्या है, उस कीर्तन का तर्ज क्या है? इत्यादि।

उनकी स्मरण-शक्ति बहुत अधिक थी। किस मिटिंग में कब, क्या बातचीत हुई, किस फाइल में कहाँ कौन बात लिखी हुई है—वे सबकुछ बता देते थे। वे कहते अमुक फाइल के अमुक पृष्ठ में बात लिखी हुई है। सन् १९६६ में वे अलांग गये थे। करीब १५ वर्षों बाद उन्होंने कहा था— 'देखो, जब मैं अलांग गया था तब मैंने एक चिट्ठी लिखी थी। आधी चिट्ठी पेन से एवं आधी पेंसिल से लिखी हुई है। उसमें यह लिखा हुआ है कि शिलांग से अलांग कैसे जाया जा सकता है, कहाँ-कहाँ पड़ाव है, रास्ते में क्या-क्या है इत्यादि।' इतने वर्षों पहले की बात उन्हें याद थी।

वे दूसरों को कभी कष्ट नहीं देते थे। जहाँ तक संभव होता अपना कार्य स्वयं करते थे। जब उनके पास मैं चाय ले जाता तब वे कहते—'चाय रख दो और चले जाओ। यहाँ रुकने की जरूरत नहीं है।' वे स्वयं चाय कप में लेकर पीते एवं कप आदि धोकर रख देते थे। प्रधान कार्यालय की दूसरी मंजिल पर उनका ऑफिस था। वे स्वयं नीचे आकर अन्य कार्यकर्ताओं को कागज-पत्र दे जाते थे। उसके लिए किसी को बुलाते नहीं थे। सुबह साढ़े सात बजने के पहले ही पत्रों के ड्राफ्ट आदि वे लिख लेते थे। कभी-कभी जब नीचे से मुझे गुजरते हुए देखते तो कहते—'एक मिनट ठहरो।' फिर जो कागज-पत्र देना रहता उसे एक रबड़ में बाँध-

कर नीचे गिरा देते थे। परन्तु अधिकांशतः : वे स्वयं वे कागज-पत्रादि नीचे आकर दे जाते थे। एक बार दक्षिण भारत के किसी स्थान पर एक दुग्धशाला क्षेत्र (Dairy farm) देखने जा रहे थे। करीब सताइस मील का सफर का। उनके चाय पीने का समय साढ़े नौ बजे था। उस दिन करीब दस बज गया, परन्तु उनका चाय पीना नहीं हुआ था—मैंने कहा, 'महाराज' थोड़ी चाय पी लीजिए।' इसपर उन्होंने कहा—'समय तो बीत चुका है।' मैंने अनुरोध के स्वर में कहा, 'महाराज, अभी दुग्धशाला पहुँचने में बहुत देर है। करीब बारह बजे हमलोग पहुँचेंगे। इसीलिए थोड़ी चाय पी लीजिए।' अंत में उन्होंने कहा—'अच्छा, यदि किसी को कोई असुविधा न हो तो दो।' इस प्रकार वे दूसरों की सुविधा-असुविधा का ख्याल सब समय रखते थे।

उन्हें फिजूल खर्ची पसंद नहीं थी। जितने कम खर्च में काम चल सकता था वे उतना ही खर्च करते थे। दुर्गापूजा के समय मठ-मिशन के सभी केन्द्रों में बेलुड़ मठ से कार्ड भेजे जाते हैं। एक बार मैंने उनसे कहा था—महाराज, विदेश के केन्द्रों में कार्ड भेजने पर पैंतीस पैसे लगते हैं। यदि एरोग्राम भेजा जाय तो मात्र पैंतालीस पैसे लगेंगे और एरोग्राम भेजना अच्छा होगा। इस पर उन्होंने कहा—'देखो, विदेश में मठ-मिशन के बीस केन्द्र हैं। एक-एक केन्द्र के लिए १० पैसे अधिक खर्च करने पर दो रुपये अधिक खर्च हो जायेंगे। दो रुपये अधिक खर्च करने की क्या जरूरत है।' पुराने लिफाफे को फाड़कर उस पर वे रफ कार्य करते थे। एक कार्य के लिए नये कागज का व्यवहार वे फिजूल खर्ची समझते थे। इन्हीं छोटी-मोटी बातों से उनके विलक्षण चरित्र की झलक मिलती है।

वे हमेशा कहते थे—'हम पहले साधु हैं, इसके बाद अन्य कुछ। आज यहाँ हैं तो कल पेड़ के भी नीचे रह सकते हैं।' संध्या के समय छः बजते ही वे सभी कार्य छोड़कर जप-ध्यानादि करने चले जाते थे तथा दूसरों को भी वैसा ही करने को कहते थे। वे कहते, कार्य तो सब दिन है, आज नहीं होगा तो कल होगा। उनके लिए साधु-जीवन मुख्य था एवं कार्य गौण।

□

स्मृति-कण

— स्वामी श्रीकृष्णानन्द
रामकृष्ण मिशन, जमशेदपुर।

"चिर भास्कर हे महासाधक चिर सौम्य ब्रह्मानन्द।
भक्त हृदये चेतनायित गुरुवे नमो श्री गंभीरानन्द॥"

व्यक्तिगत रूप से श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्द जी महाराज के पुण्य सान्निध्य-लाभ करने एवं उनके मुखारविन्द से बहुमूल्य उपदेश सुनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। उनसे संबंधित दो-एक घटनाओं का उल्लेख मैं यहाँ कर रहा हूँ।

सन् १९७२ की बात है। उस समय मैं बेलुड़ मठ में ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र में प्रशिक्षणरत था। उसी समय मैं एक बार बीमार पड़ा। मठ की तरफ से रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान (कलकत्ता) में मेरी चिकित्सा की व्यवस्था की गयी। आदेशानुसार मैं जाने के लिए प्रस्तुत होकर पूज्यपाद स्वामी गंभीरानन्द जी महाराज को प्रणाम करने गया। प्रणाम करके उन्हें अस्पताल जाने का कारण बताया। थोड़ी देर तक आँखें बन्द करने के बाद उन्होंने कहा : "हाँ, जाना तो होगा, शरीर ठीक रखने के लिए जाना ही तो है, नहीं तो स्वामीजी का काम कैसे करोगे? हमलोगों का जीवन दूसरों की सेवा करने

के लिए है, दूसरों से सेवा लेने के लिए नहीं।"

दूसरी घटना सन् १९७४ की है। मैं ब्रह्मचर्य मंत्र से दीक्षित होकर प्रणाम करने गया। स्थितप्रज्ञ पुरुष के समान वे आराम कुर्सी पर बैठे हुए थे। प्रणाम करते ही उन्होंने पूछा कि मेरे ब्रह्मचर्य का नाम क्या है? उत्तर में मैंने कहा—"विदेह चैतन्य।" तब उन्होंने कहा—"हूँ—विगतः देह-बुद्धिः यस्मात् सः विदेहः।" मैंने पूछा - "महाराज, इसका अर्थ ठीक-ठीक नहीं समझा। मेरे मन में एक और अर्थ पैदा हो रहा है।" उन्होंने कहा : "वह क्या?" मैंने कहा—"विशेष रूप से जो देह में उपस्थित है, वह विदेह है।" अर्थात् मैं थोड़ा मोटा था। इसलिए इस प्रकार की व्याख्या करके अपेक्षा की कि वे क्या जवाब देते हैं? कुछ देर के बाद वे हँसते-हँसते बोले—"यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी" — अर्थात जिसकी जैसी भावना उसको वैसा लाभ।

तीसरी घटना भी मठ की है। हम सभी ब्रह्मचारी उस समय पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज के पास उपनिषद् पढ़ते थे। मिशन ऑफिस में उस समय वे पढ़ाते थे - दो बजकर पन्द्रह मिनट से। इस समय पूज्यपाद स्वामी गंभीरानन्द जी महाराज मिशन ऑफिस के छोटे बरामदे में टहलते थे। एक दिन हमलोगों से उन्होंने पूछा : "आज तुमलोग क्या पढ़ोगे?" उत्तर में कहा—"मुण्डकोपनिषद्।" वे बोले—"गुरु के पास समितपाणि होकर शास्त्र पढ़ना होता है। तुमलोग आचार्य के लिए क्या लाये हो?" हमलोगों ने कहा - "हमारे पास तो देने लायक कुछ नहीं है। इसीलिए पुस्तक लेकर आये हैं।" इसपर वे बोले : "तुमलोगों ने अपने आचार्य से पूछा है कि वे तुमलोगों से क्या चाहते हैं?" पूर्व निर्देशानुसार क्लास आरंभ होते ही हमने आचार्यदेव से वह बात पूछी। प्रश्न सुनते ही आचार्य देव बोल उठे—"इस तरह का प्रश्न तुम्हारे मन से तो नहीं निकलेगा। निश्चय ही स्वामी गंभीरानन्द जी ने तुम्हें यह सिखा दिया है।" हमलोग और कुछ नहीं बोल सके। किन्तु एक प्रकार के अपूर्व आनन्द का अनुभव हुआ, उन दोनों पंडितों का आध्यात्मिक कौतुक देखकर।

स्मृति-अर्घ्य

—स्वामी विमलात्मानन्द
बेलुड़ मठ।

बेलुड़ मठ के प्रधान कार्यालय के बाहरी बरामदे में रखी बेंच पर प्रतिदिन तीन वरिष्ठ संन्यासियों को बैठे हुए देखा जाता था। मैं उस समय बेलुड़ स्थित रामकृष्ण मिशन विद्यामन्दिर का छात्र था। एक साधु सिर्फ गंजी पहने हुए, दूसरा साधु खुला बदन एवं तीसरा साधु कुर्ता पहने हुए रहते थे। पूछने पर पता चला—गंजीधारी संन्यासी हैं रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव पूज्यपाद स्वामी गंभीरानन्द जी। मैं अवाक् हो गया। वे इतने साधारण रूप से रहते थे कि लोग उन्हें पहचान ही नहीं पाते थे। उनको देखने पर ऐसा नहीं लगता कि वे विशाल संघके प्रधान कर्णधार हैं। जब हमलोग (विद्यामन्दिर के छात्र) नियमानुसार प्रणाम करने गये थे, तब उनके शान्त-सौम्य मुखमंडल पर कोई प्रतिक्रिया, चंचलता या किसी प्रकार के आनंद का उच्छ्वास नहीं था। मुझे बहुत अद्भुत लगा था। परवर्ती काल में, जब मैंने एक साधु कार्यकर्ता के रूप में प्रधान कार्यालय में कार्य करने का सौभाग्य पाया तब इसका गूढ अर्थ समझने में समर्थ हुआ था।

मैं सन् १९७४ के अगस्त महीने में चेरापूंजी से बेलुड़ मठ के प्रधान कार्यालय में राहत विभाग के कार्य-

कर्ता के रूप में आया। तभी से पूजनीय गंभीरानन्दजी को विभिन्न रूपों में देखा है। एक आदर्शपूर्ण सुसमन्वित जीवन वे हमलोगों के समक्ष रख गये हैं। हमलोगों ने तो श्रीरामकृष्ण के लीला-पार्षदों को नहीं देखा है, किन्तु उनके शिष्यों को देखकर उनके संबंध में थोड़ा बहुत अनुमान किया जा सकता है। उनका जीवन घड़ी की सूई के समान था। जिसको 'रूटिन लाइफ' कहते हैं। थोड़ा सा भी इधर-उधर होने की गुंजाइश नहीं थी। सुबह-शाम वे मठ के प्रांगण में टहलते थे। वर्षा होने पर छाता लेकर टहलते थे। नहीं तो, अपने घर के बरामदे पर चल-फिर करते थे। बहुत जरूरी काम रहने पर भी, खासकर संध्या के समय, थोड़ा समय निकालकर जप कर लेते थे। उस समय अपने सहकर्मियों को अपने कमरे से चले जाने के लिए कहते थे। जप करने के बाद सहकर्मियों को लेकर पुनः कार्य करने बैठते थे। इसका कभी व्यतिक्रम नहीं हुआ।

वे सभी विषयों में निर्विकार थे, निरभिमानी थे—विभिन्न लोगों की वाणी एवं रचनाओं से यह स्पष्ट मालूम होता है। यहाँ पर भी कुछ दृष्टान्तों का उल्लेख करता हूँ। वे मिर्च मिलायी हुई कोई भी तरकारी अथवा झोल नहीं खा सकते थे। एकबार भूलवश मिर्च-रहित झोल के बदले मिर्चयुक्त झोल उनको दिया गया। उन्होंने खाया एवं इसको लेकर किसी को कुछ नहीं कहा या किसी के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं की।

पूज्य गंभीरानन्दजी रामकृष्ण मठ एवं मिशन के अन्यतम सहाध्यक्ष निर्वाचित हुए हैं। यह स्थिर हुआ कि वे राँची के मोराबादी आश्रम में रहेंगे। जिस दिन वे मठ से राँची रवाना होंगे, उस दिन हावड़ा स्टेशन पर बहुत साधु ब्रह्मचारी एवं भक्त उपस्थित हुए थे। उनको विदा करने के लिए इतने लोग उपस्थित हुए थे, कई लोगों का मन वेदना-भाराक्रान्त था। किसी किसी की आँखों में आँसू थे। किन्तु पूज्य महाराज निर्विकार, उनके मुखमण्डल पर कोई अभिव्यक्ति अथवा आनन्द के अतिशय का कोई चिह्न नहीं था। यह दृश्य देखने योग्य था। सुख-दुःख में सम-ज्ञान, लाभ-हानि में निर्विकार, जय-पराजय में उद्विग्न न होना—गीता की ये बातें उनके अन्दर मूर्त हो उठी थीं।

पूज्य गंभीरानन्दजी बाहर से गंभीर थे। सहज में कोई उनके निकट नहीं जा सकते थे, किन्तु कोई यदि उस गंभीरता के आवरण को भेदने में सक्षम होते, तो वे पूज्य महाराज के सरल हँसी-खुशी भाव को देख पाते थे। कुछ दिनों तक उनकी व्यक्तिगत चिट्ठी लिखने का विरल सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। पहले-पहले मुझे बहुत डर लगता था। दो-एक दिन बीतने के बाद मेरा भय एकदम दूर हो गया। शुरू से ही उन्होंने अति सहज भाव से व्यवधान दूर कर दिया था। तब उनके उपर्युक्त भाव को मैंने देखा था। यह मेरे प्रति उनकी कृपा थी। उस समय मैंने बहुत कुछ उनसे सीखा था।

एक समय मठ के P. P. T. C. (नवागत ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र) के ब्रह्मचारियों को वे उपनिषद् पढ़ाते थे। संध्या के समय जप-ध्यान के बाद अपने कमरे में वे क्लास लेते थे। उस समय वे उनके साथ इस प्रकार बात-चीत करते थे, मानो नाना-नाती का संबंध हो। ब्रह्मचारी लोग उनके साथ बहुत खुलकर बातें करते थे। किसी किसी के नाम को लेकर वे बहुत मजाक करते थे एवं सबों को हँसाते थे।

बाबा अमरनाथ के दर्शन के बाद पूज्य महाराज ने, अपने ऑफिस के बरामदे पर ट्रेनिंग सेन्टर के ब्रह्मचारियों को अमरनाथ की अभिज्ञता बतायी थी। कहानी की तरह अति सुन्दर ढंग से उन्होंने उसका वर्णन किया था। एक सहयात्री डॉक्टर के रोने-धोने की नकल करके उन्होंने सबको हँसाया था। उस समय मन ही मन कहा—लोग क्यों उन्हें गंभीर कहते हैं। एक भक्त ने पूज्य महाराज को साधु-ब्रह्मचारियों को देने के लिए काश्मीरी मफलर खरीदकर दिया था। अमरनाथ से लौटकर अपने हाथों से उन्होंने सभी को एक-एक मफलर दिया था। मफलर देते समय मजाक करते हुए उन्होंने कहा था : "सत्यकृष्ण (स्वामी आत्मस्थानन्दजी) ने व्यवस्था की है, रामेश्वर (एक भक्त) ने खरीद दिया है और मैं केवल बाँट रहा

हूँ। किन्तु इसमें मेरा नाम हो जा रहा है।" नाम 'गंभीर' होने से क्या हुआ? बाहर गंभीर भाव होने से क्या हुआ? वास्तव में वे रंगरसमय आमोदमय व्यक्ति थे।

पूज्य गंभीरानन्दजी महाराज कभी भी कोई विशेष सुविधा नहीं लेना चाहते थे। उस समय वे सहाध्यक्ष थे। एक बार उन्हें अपनी आँख डाक्टर को दिखाने की आवश्यकता हुई। इच्छा करने पर वे सीधे डाक्टर के चैम्बर में जा सकते थे अथवा डाक्टर परीक्षण-यंत्र आदि मठ में ले आकर उनकी परीक्षा कर सकते थे। परन्तु ऐसा वे कभी नहीं करते थे। सेवा प्रतिष्ठान जाते थे। वहाँ आउटडोर में दिखाते थे। डाक्टर को आने में देर होने पर साधारण रोगी की तरह वे आउटडोर में प्रतीक्षा करते थे। एकबार की घटना का मैं भी साक्षी हूँ।

जो-जो प्राचीन संन्यासी श्री श्रीमाँ के शिष्य थे उनके प्रति पूज्य गंभीरानन्दजी की अगाध श्रद्धा एवं प्रेम था। यहाँ तक कि जब वे संघ गुरु थे, तब भी इसमें व्यतिक्रम नहीं हुआ। पूज्य स्वामी सारदेशानन्दजी (गोपेश महाराज) श्री श्रीमाँ के शिष्य हैं। वृन्दावन में रहते हैं। शरीर बहुत खराब है। गत वर्ष दुर्गापूजा एवं मिटिंग आदि के बाद वे उनको देखने गये। वहाँ पूज्य गोपेश महाराज को उन्होंने पैर छूकर प्रणाम किया। यद्यपि पूज्य गोपेश महाराज पूज्य गंभीरानन्दजी से उम्र में बड़े थे, किन्तु पूज्य गोपेश महाराज का संन्यास दो वर्ष बाद हुआ था। एक ब्रह्मचारी ने साहस करके पूछा: 'संन्यास-जीवन में आप गोपेश महाराज से बड़े हैं। आप संघगुरु हैं। आपने क्यों उन्हें प्रणाम किया? पूज्य महाराज ने उत्तर दिया: 'गोपेश महाराज श्री श्रीमाँ के शिष्य हैं। वह कोई साधारण बात नहीं है।'

एक महान् जीवन की कुछ झलकें

—एक ब्रह्मचारी

रामकृष्ण संघ के एकादश संघगुरु श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज के संस्मरण लिखते समय मुझे श्रीमद्भगवद्गीता के एकादश अध्याय की बात याद आती है। इस अध्याय में यह लिखा हुआ है कि श्री कृष्ण के विराट् रूप को देखकर अर्जुन के समान निर्भीक एवं साहसी व्यक्ति भी भयभीत हो जाते हैं। अंत में श्रीकृष्ण पुनः अपना सौम्य रूप धारण करते हैं। यही बात एकादश संघगुरु के साथ लागू होती है। कई लोग उनसे डरते थे। प्रायः वे गंभीर रहते थे। नाम के साथ व्यक्ति के स्वभाव का सादृश्य प्रायः देखा जाता है। इनके भी संबंध में यह सर्वतोभावेन प्रयोज्य था। किन्तु उनके जीवन के अंतिम दिनों में उनके सांसारिक-जीवन के प्रारंभिक नाम 'सौम्य चैतन्य' का पूर्ण प्रकाश दिखायी देता है। वे कितने दर्दी, कितने अपने, कितने सरल थे—यह उनके लिए अज्ञात है, जिन्होंने अंत समय में उन्हें नहीं देखा है। उनकी 'सौम्य मूर्ति' के दर्शन भाग्यवान लोग ही कर पाये हैं।

उनकी गंभीरता के तीन प्रधान कारण हैं—इनका विशाल एवं गुरु-गंभीर व्यक्तित्व, सदा शास्त्रचिन्तन एवं प्रशासनिक कार्यों में मग्न रहना एवं उनकी वाक् संयमता किन्तु गंभीरता के साथ-साथ उनमें मधुरता एवं रसिकता भी थी। इसके कई दृष्टांत हैं। यहाँ पर मैं इसके संबंधित केवल एक ही घटना का उल्लेख करूँगा पूजनीय महाराज रामकृष्ण योगोद्यान मठ (कलकत्ता) गये हुए हैं। वहाँ एक नवनिर्मित भवन का द्वारोद्घाटन उन्हें करना है। इस समय वहाँ के अध्यक्ष स्वामी भूतेशानन्द जी थे। द्वारोद्घाटन के बाद सबों ने एकसाथ मिलकर ठाकुर, माँ, स्वामीजी एवं गंगामाई की जय कहा। 'गंगा माई की जय' समाप्त होते ही गंभीर महाराज बोल

उठे—'जय महन्त महाराजजी की जय।' इसपर सभी जोरों से हँसने लगे।

वे बहुत ही समय-निष्ठ थे। सभी कार्य एक निश्चित रूटिन के अनुसार नियत समय पर करते थे। वे मजाक में कहा करते थे: "मरने के बाद भी मेरी रूटिन ठीक चलती रहेगी।" वे कहते: "रूटिन के अनुसार १५-२० मिनट भी प्रतिदिन कुछ किया जाय तो देखोगे कुछ दिनों के बाद बहुत बड़ा कार्य समाप्त हो गया।" एकबार उनके एक शिष्य ने पूछा, "किसी-किसी दिन जप-ध्यान करना बहुत अच्छा लगता है; मन करता है और अधिक देर तक बैठूं। इस प्रकार बैठकर भी देखा है बहुत अच्छा लगता है। इसीलिए जितनी देर तक अच्छा लगे जप-ध्यान करूँगा या जप-ध्यान के निर्दिष्ट समय के बाद प्रतिदिन जिस प्रकार पढ़ाई-लिखाई करता हूँ, जप-ध्यान छोड़कर पढ़ाई-लिखाई करूँगा?" इस पर उन्होंने कहा: 'जप-ध्यान के निर्दिष्ट समय के बाद पढ़ाई-लिखाई करना। उसको भी जप-ध्यान मानना। रूटिन के ही अनुसार चलना अच्छा है।"

अंतिम दिनों में किसी एक दिन उनका शरीर अच्छा नहीं था। आयु प्रायः ८८-८९ साल की होगी। सेवक महाराज ने कहा: "महाराज, भक्तों के प्रणाम आज स्थगित कर दूँ?" तब उन्होंने कहा: "तो और जीवित ही रहकर क्या लाभ है, रे? इतना कार्य भी यदि नहीं कर सकता हूँ, तो श्री श्रीठाकुर के अन्न खाने की क्या आवश्यकता है?" इस प्रकार अंत समय तक वे सेवा में सदा तत्पर थे।

पिछले स्नान-यात्रा के दिन उन्होंने एक नवीन ब्रह्मचारी से पूछा: "क्या रे गंगा स्नान किया है?" उस दिन वह गंगा-स्नान किया था। इसीलिए बोला—"हाँ महाराज" महाराज ने पुनः पूछा: "कब किया था?" यह प्रश्न पूछने का कारण वह नहीं समझ पाया। सोचा श्री श्रीठाकुर का स्नान सात बजे होता है, इसीलिए शायद महाराज पूछ रहे हैं। अतः उत्तर दिया—"सात बजे के पहले।" महाराज ने पुनः प्रश्न किया। "कितने बजे?" वह थोड़ा सोचकर कहा—"साढ़े पाँच से छः बजे के बीच।" यह सुनते ही महाराज बोल उठे: "उस समय तो अन्धकार रहता है रे।" वह कहा—"नहीं महाराज।" उस ब्रह्मचारी का मन अनिर्वचनीय आनन्द से भर गया। इसके मन में यह बात दृढ़ रूप से अंकित हो गयी कि अन्ततः विशेष-विशेष अवसरों पर गंगा-स्नान जरूर करना चाहिए। वह आनन्दाश्रु सिक्त होकर सोचने लगा—अंधकार में स्नान करता हूँ या नहीं, 'इसकी भी खबर महाराज लेते हैं ताकि कोई दुर्घटना न हो। कैसी कृपा? माँ के समान अपने चरणाश्रितों का ख्याल रखना।

वैसे वे प्रणामादि पसंद नहीं करते थे। कोई प्रणाम करने आता तो कहते: "जाओ, मंदिर में श्री श्रीठाकुर माँ, स्वामीजी को प्रणाम करो।" किन्तु दीक्षा के दिन गुरु-प्रणाम के समय सेवक से कहते: "दे, मौजा खोल दे जिससे वे लोग अच्छी तरह प्रणाम कर सकें। वे लोग तो एकबार प्रणाम करेंगे।"

अब कहिए, देखने में वे लगते हैं पूर्ण वेदान्तिक किन्तु गंगा भक्ति: प्रणाम पसंद नहीं करते हैं, किन्तु दीक्षा के समय मौजा तक खोल देते हैं। अतएव, इस वैचित्र्यमय जीवन को समझना बहुत ही कठिन है।

शिष्यों के कल्याण-साधन के प्रति उनकी तीक्ष्ण-दृष्टि रहती थी। बारासात आश्रम की एक घटना है। वहाँ उन्होंने कुछ दीक्षार्थियों को दीक्षा दी थी। गुरु-प्रणाम के समय एक दीक्षार्थी गुरु को अच्छी तरह प्रणाम किये बिना जा रहा था। महाराज ने उन्हें बुलाकर कहा: "देखो, गुरु को अच्छी तरह प्रणाम करना चाहिए।" तब उसने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। जिससे शिष्य का कल्याण हो, इसीलिए उन्होंने उससे ऐसा करवाया।

पूज्यपाद स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज त्याग एवं सेवा की प्रतिमूर्ति थे। उनके त्याग के संबंध में अन्य

लोगों की कैसी उच्च धारणा थी, वह निम्नलिखित दृष्टान्त से स्पष्ट हो जायगा।

उनके देह-त्याग के बाद उनके द्वारा व्यवहृत चीजों को स्मृति चिह्न के रूप में कई लोगों को दिया गया था। मठ के एक वरिष्ठ साधु को उनके कुर्ते के बटन दिये गये। बटन देखने में सोने जैसा लग रहा था। इसीलिए उन्होंने अन्य एक साधु को बटन दिखाते हुए कहा: "देखते हो, सोने के बटन हैं।" यह सुनकर उन्होंने कहा: "सोने के बटन रहने पर गंभीरानन्द जी साथ-साथ विदायी कर लेते, बिक्री कर देते।" यह बात उनके मन में घर कर गयी। उन्होंने सोचा ठीक ही तो, गंभीरानन्द जी तो कभी भी सोने के बटन व्यवहार नहीं कर सकते हैं। बाद में उनकी परीक्षा करने पर पता चला कि वे साधारण बटन हैं। यह घटना बहुत ही मामूली है किन्तु दूसरों के मन स्वामी गंभीरानन्द जी के त्याग संबंधी धारणा का द्योतक है।

●

पूजनीय गुरुदेव के स्मृति-सुमन

ब्रह्मचारी विवेक
रामकृष्ण आश्रम, टाकी, पं० बंगाल।

सूर्य हमारे दैनन्दिन जीवन के साथ सहजभाव से जुड़ा होता है; जगत् को उद्भासित करने वाली उसकी किरणें हमें इतने सहजभाव से उपलब्ध हो जाती हैं कि हम उसकी महिमा को प्रायः भूल जाते हैं। उसकी महिमा की तीव्र अनुभूति तब होती है जब सूर्य अस्ताचल गामी होता है और सूचिभेद्य अंधकार हमें चारों तरफ से घेर लेता है। पूजनीय श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज एक ऐसे ही देदीप्यमान ज्ञान-सूर्य थे, जो भारतवर्ष के अध्यात्म जगत् को कई दशकों तक अपनी ज्ञान रश्मियों से आलोकित करते रहे थे। अब वे स्थूल शरीर में नहीं हैं। आज हम सभी अपने हृदय के अंतरतम प्रदेश में उनका अभाव-बोध तथा उनकी वियोग-वेदना की तीव्र अनुभूति कर रहे हैं।

बेलुड़ मठ, वर्ष १९८८ २७ दिसम्बर की मनहूस शाम। लगभग आठ बज रहे होंगे। अकस्मात् प्रधान कार्यालय के सेवकों की भाग-दौड़ तथा धप्-धप् की आवाज सुनाई दी। मन ही मन सोचता हूं– कहीं कोई अमंगल तो नहीं घटित हुआ? कुछ ही क्षण बाद एक ब्रह्मचारी आकर यह अशुभ, अप्रिय, किन्तु सत्य दुःसंवाद सुनाते हैं—"प्रेसिडेन्ट महाराज ने महासमाधि ले ली हैं।" "कितने बजे?" "शाम सात बजकर सत्ताइस मिनट पर।" सुनकर स्तब्ध रह जाता हूं मानो पैरों तले से धरती खिसक गयी हो। हाय री मृत्यु इस नश्वर जगत् की सबसे सुनिश्चित वस्तु! परन्तु तुम्हारा आगमन—आह— कितना अनिश्चित! सामने दीवार पर माँ, ठाकुर एवं स्वामीजी की छवि टँगी हुई है। उधर देखता हूं। क्या बोलूं? आँखों से टप टप आसूं की बूंदें गिर रही हैं—"तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो प्रभु!" और इसके साथ ही मानस—पटल पर एक-एक कर उभरती जाती हैं—महाराज से जुड़ी कई मधुर स्मृतियाँ! प्रथम परिचय से लेकर अन्तिम दर्शन तक की।

३० अगस्त १९८० को जमशेदपुर में मैंने श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज की कृपा प्राप्त की थी। वहीं पर मैंने उनका प्रथम दर्शन प्राप्त किया था। वे देखने में हट्टे-कट्टे, सौम्य, शांत तथा गंभीर थे। शरीर था गौर वर्ण। दीक्षा के पूर्व दिन मुझे अपने पास बुलाकर उन्होने बड़े ही प्रेम से दीक्षा संबंधी जानकारी दी थी।

डेढ़-दो वर्ष बाद पुनः जमशेदपुर में ही महाराज के द्वितीय दर्शन हुए थे। उस समय मैंने उनसे निम्न-लिखित प्रश्न भी किये थे—

प्रश्न—"महाराज, ध्यान के समय तो मन स्थिर होता ही नहीं। बहुत सारे विचार मन को चंचल बना देते हैं।"

महाराज—"हाँ, वैसा ही होता है। मन का स्वभाव ही वैसा है।"

प्रश्न—"तो उपाय क्या है?"

महाराज—"दीक्षा के समय जैसा बतलाया गया है, वैसा ही करते चलो।"

१९८७ ई० के अक्तूबर महीने में मैंने ब्रह्मचारी के रूप में बेलुड़ मठ में योगदान किया। तब से पूजनीय महाराज के दर्शन एवं उनके अमृतमय उपदेशों के श्रवण करने का दुर्लभ सौभाग्य बहुत प्राप्त हुआ था। इसके पहले, जमशेदपुर के अतिरिक्त राँची में एक बार तथा बेलुड़ मठ दो बार मैंने उनके दर्शन किये थे तथा उनसे थोड़ी-बहुत बातचीत भी हुई थी। बेलुड़ मठ में उनका द्वार सदा खुला रहता था। जब कभी मन में कोई प्रश्न उठता, तभी उनके पास समाधान के लिए पहुँच जाता था। एक दिन की बात है। मैं पूजनीय महाराज के पास अपने कुछ सन्देशों के निराकरण के लिए गया। उस दिन की बातचीत का कुछ अंश इस प्रकार है—

प्रश्न—"महाराज, निराकार भाव के अनुसार ध्यान कैसे किया जाता है?"

उत्तर—"निराकार भाव! बहुत कठिन, बहुत कठिन। सर्वदा 'मैं ब्रह्म हूँ'—ऐसा सोचना पड़ेगा। तुम कौन है? तुम शरीर नहीं, मन नहीं, बुद्धि नहीं—तुम आत्मा है। मैं ब्रह्म हूँ।"

प्रश्न—"तो इस प्रकार की साधना में कर्मफल समर्पित करना होता है?"

उत्तर—"नहीं, कौन किसको समर्पित करेगा?"

प्रश्न—"तो फिर मंत्र-जप किस भाव से करना होगा?"

उत्तर—"सब ब्रह्म है, सब कुछ ब्रह्म है—इस भाव से मंत्र-जप करना होता है।"

महाराज के उत्तरों को सुनकर मेरे सन्देह दूर हो गये।

पूजनीय गुरुदेव की दिनचर्या अत्यन्त नियमबद्ध थी। प्रत्येक कार्य वे नियत समय पर ही करते थे। बेलुड़ मठ में मैंने देखा है, वे प्रतिदिन सुबह में सवा पाँच बजे के आसपास ठाकुर मंदिर आते थे तथा भूमिष्ठ होकर ठाकुर को प्रणाम करते थे। उसके बाद कुछ देर तक मठ की सड़कों पर भ्रमण करते थे। शाम में भी संध्या-आरती के बाद कुछ देर तक वे टहलते थे। टहलने के दौरान सेवक महाराज उनके साथ शास्त्र-चर्चा किया करते थे।

प्रातः काल जब हमलोग उनको प्रणाम करने जाते थे तो वे प्रायः अपनी कुर्सी पर मौन बैठे रहते थे। यदि कोई कुछ पूछता तो दो—एक शब्दों में उत्तर देकर पुनः चुप हो जाते थे। परन्तु किसी-किसी दिन मैंने उन्हें कुछ दूसरे ही भाव में बैठे देखा था। अस्पष्ट स्वर में कुछ गुनगुना रहे हैं तथा कुर्सी के हत्थे पर बहुत ही धीरे धीरे अंगुलियों से तबला वादन जैसा कर रहे हैं। उस समय वे एक छोटे बालक की तरह लगे जो दुनियाँ से बेखबर अपने आप में मस्त हो।

कुछ कार्यवश एक-दो महीने में प्रातःकाल महाराज को प्रणाम करने का समय नहीं पाता था। इसीलिए शाम को आता था। शाम को प्रायः हमलोग तीन साधु-ब्रह्मचारी प्रणाम करने आते थे। बाद में भक्तों का प्रणाम होता था। महाराज की दृष्टि क्षीण हो गयी थी। अतः वे स्पष्ट नहीं देख पाते थे; गेरुआ वस्त्र एवं सादा वस्त्र की पहचान कर यही समझते थे कि उनके पास संन्यासी है अथवा ब्रह्मचारी। इसीलिए सेवक महाराज नाम लेकर कहते—"अमुक व्यक्ति प्रणाम कर रहा है।" एक दिन जब मैं उन्हें प्रणाम कर रहा था तो सेवक महाराज ने उनसे कहा—"विवेकानन्द प्रणाम कर रहा है।" इसपर महाराज ने मुझसे कहा—"अरे,

दुनिया में तो केवल एक ही विवेकानन्द पैदा हुआ है। इतना बड़ा नाम कैसे चलेगा ?" मैंने कहा—हाँ, महाराज। यहाँ सभी मुझे 'विवेक' कहकर ही पुकारते हैं, 'विवेकानन्द' नहीं। तब महाराज बोले—"हाँ, वह ठीक है, चलेगा।" फिर अन्य दिन जब प्रणाम करने जाता तब सेवक महाराज बोलते—"विवेक प्रणाम कर रहा है।" किन्तु महाराज पहचान नहीं पाते। वे बोलते—"क्या ?" तब सेवक महाराज को पुनः कहना पड़ता—"विवेकानन्द प्रणाम कर रहा है।" यह सुनकर गुरुदेव एवं उपस्थित सभी लोग हँसने लगते। तथा सेवक उनसे कहते—"यह 'विवेकानन्द' नाम जाने का नहीं, महाराज ! 'विवेकानन्द' नहीं बोलने से आप पहचानते ही नहीं हैं।"

एक विशेष अवसर पर गुरुदेव पूजनीय भरत महाराज (वयोवृद्ध साधु स्वामी अभयानन्दजी महाराज) को प्रणाम करने गये। संयोग से मैं भी वहीं उपस्थित था। महाराज को पहले ही खबर दे दी गयी थी। गुरुदेव ने भूमिष्ठ होकर भरत महाराज को प्रणाम किया। उसके बाद पास में रखी कुर्सी पर बैठे। भरत महाराज ने पूछा—कैसे हो ? गुरुदेव ने कहा—अच्छा ही हूँ। अब बूढ़ा हो गया हूँ।" 'बूढ़ा हो गया हूँ'—यह सुन-उपस्थित सभी साधु-ब्रह्मचारी हँस पड़े। भरत महाराज ने और भी कहा—"स्वास्थ्य का ख्याल रखोगे। अधिक यात्रा वगैरह नहीं करोगे।" कुछ देर बैठने के बाद गुरुदेव उनसे विदा लेकर चले गये। भरत महाराज की बात सच निकली। स्वास्थ्य की परवाह न कर इस वृद्धावस्था में भी महाराज लम्बी यात्राएँ करते रहे। दूर-दूर जाकर लोगों पर कृपा की। और इसी यात्रा में बारासात आश्रम में वे बीमार पड़ गये जो अन्ततः जान-लेवा साबित हुई।

ऋतुएँ आती हैं, जाती हैं। वर्ष पर वर्ष बीतते जाते हैं; काल चक्र गतिशील है। परन्तु बीते दिनों की मधुर स्मृतियाँ कभी मरतीं नहीं। आज पूजनीय गुरुदेव स्थूल शरीर में विद्यमान नहीं हैं। किन्तु हम सभी की स्मृति में वे किसी चटकीले, ओस से भींगे, ताजे गुलाब की तरह सजीव हैं और चिरकाल तक सजीव एवं नित्य नवीन बनकर उसे उद्भासित एवं सुवासित करते रहेंगे। श्रीगुरु कभी मरते नहीं। उस एक दीप से आज सहस्रों दीप प्रज्ज्वलित हैं। इन सहस्र-सहस्र दीपों की जगमगाहट से, उनकी उज्ज्वल शिखाओं में हम अभी भी उन्हें देख पाते हैं।

मेरे गुरु—स्वामी गम्भीरानन्द

—कुमारी चुकचुक
तृतीय वर्ष (चिकित्सा-विज्ञान) बेलगाम (कर्नाटक)

दीक्षा मिली थी मुझे रायपुर आश्रम में। कक्षा ग्यारह की छात्रा थी। गुरु क्या होते हैं—सठीक ज्ञान तो मुझे नहीं था—पर हाँ, दीक्षा के बाद एक आनन्द की सिहरन-सी बह गयी थी सारे मन में। और फिर उसके बाद से मन में एक ही इच्छा छायी रहती थी—कब और कैसे पूजनीय गुरुदेव के दर्शन करूँ ! देश के पश्चिमी छोर में रहती हूँ। पर छुट्टियों में, पूर्वी छोर के घर में जाने के पहले दो-एक दिन के लिए बेलुड़ जरूर जाती थी। कभी दर्शन होते थे, कभी नहीं।

एक दिन की बात है.....

उनके निवासस्थान पर बाहर बरामदे में थोड़ा पहले ही जा पहुँची—जहाँ उनकी बन्द खिड़की के सामने बड़ा-सा गुलदस्ता बना रहता है—रंग-बिरंगे जवाफूलों से। उनके दर्शन देने का समय थोड़ा बाकी था। स्वामी आत्मारामानन्दजी से सुना था कि इस समय "गुरु"

गीता का अनुवाद लिखवाते थे। तत्पश्चात दर्शन देते थे। मेरी पंचेन्द्रियाँ, विशेषकर कान, उसी बन्द खिड़की के उस पार लगे थे, शायद उनकी आवाज सुनाई पड़ जाय। 'गीता' का रहस्य तो मेरी समझ के परे था; पर उनके शब्द ही मीठे लगते। अचानक कानों पर विश्वास नहीं हुआ : –

–"महाराज अमुक भक्त ने आइसक्रीम भेजी है। इस घर में भी आयी है। आपके लिए रखी हुई है।"

–(मृदु हास्य से) "तो तुम्हारे द्वारा ही उसकी सद्गति हो जाय .....

–नहीं महाराज ! बड़ी स्वादिष्ट है। पिस्ते, मेवे पड़े हैं .....

– .....

हाय ! फिर कुछ नहीं सुनाई पड़ा। तब तक मैंने बन्द खिड़की से कान सटा दिये थे। बड़ा गुस्सा आ रहा था। क्यों इतना धीरे बोलते हैं ! पर उनके व्यक्तित्व का एक नया दरवाजा खुल गया—मेरे सामने। नाम के अनुसार ही वे गम्भीर स्वभाव के हैं- यही अब तक मैं समझती थी। पर आज यह जानकर मेरा अपनापन और बढ़ गया--तो वे भी अपने कम उम्र के संन्यासी शिष्यों के साथ हलका-फुलका मजाक कर लेते हैं !

और उसी दिन से मन के किसी कोने में एक अद्भुत और असम्भव इच्छा ने घर जमा लिया था। किसी-न-किसी दिन उनको अवश्य अपने घर ले आऊँगी तथा अपने हाथों से उनका सादा—उबला भोजन पकाकर ही खिलाऊँगी। यह मेरी जिद ही सही !!

फिर आया वह दुर्योगपूर्ण, भयंकर, कठोर दिन....।

भोर शायद ५ बजे होंगे। सहपाठिनी की आवाज आयी—"कंकण ! तेरा फोन, बोकारो से।" शायद २८ या २९ दिसम्बर का दिन था। और माँ के मुँह से वह निदारुण समाचार मिला—वे अब नहीं रहे। भक्तों के मन में विचित्र भावनाएँ उठती हैं। मुझे लगा मैं २५ दिसम्बर को चर्च गयी थी—क्या उन्हें बुरा लगा तभी बिन बताये चले गये। मैं फूट-फूटकर रो पड़ी। यहाँ कौन मुझे प्रबोध दे ? मैं बेसहारा हो गयी। अब बेलुड़ जाकर उस शून्य बेंत की कुर्सी को कैसे निहारूँगी ? इसी प्रकार करीब १५/१६ दिन बीत गये। भारी मन और उदासी के बीच माँ का एक लम्बा पत्र घर से आया और लगा—"नहीं नहीं, वे मुझपर कितना स्नेह करते थे—इसका प्रमाण दे गये इहलोक त्याग कर भी।' कितनी अलौकिक घटना थी ?? क्या कोई विश्वास करेगा ???

शायद सन्तान की मनोदशा का प्रतिफलन माँ पर भी पड़ता है—हजारों मील दूर रहकर भी—यही टेलीपैथी है। माँ ने लिखा था –"चुकचुक ! २८ दिसम्बर को टी. वी. समाचार देखने के बाद से ही एक अद्भुत अवस्था हुई। लगता था मेरे अन्दर तू समा गयी है। तेरे कमरे में, तेरे गुरुदेव के सभी चित्रों को सजाकर, पूरा दिन धूप जलाकर रखती थी। मन हर समय उन्हीं के शोक में डूबा रहता, यहाँ तक कि ३ दिनों के लिए विशाखापतनम गयी थी—कान्फ्रेंस में—वहाँ की व्यस्तता तथा भीड़ ने भी एक क्षण के लिए गुरु की याद न भूलने दी। फिर जिस दिन घर लौट आयी – वह था रविवार। उनकी तेरहवीं। मैं खा-पीकर सो गयी। ३ बजे अचानक एक अद्भुत स्वप्न देखकर नींद खुल गयी। मैं हविष्यान्न पकाकर खा रही हूँ। बड़ी भीड़-भाड़ है। चुकचुक ! मेरा मन खराब हो गया। कहीं तेरे नानाजी तो नहीं चल बसे ! फिर कमरे में घुसते ही प्रश्न का समाधान मिल गया। फोटो से उनके हँसते हुए चेहरे ने जैसे इशारा किया 'अरे ! मैं ही तो माँग रहा हूँ। जल्दी खिला। सूरज डूब जायगा। फिर मैं नहीं आऊँगा।' विश्वास कर बेटी ! जैसे बिजली कौंध गयी। जल्दी से हाट से मिट्टी की हँड़िया मँगाकर ईंट के चूल्हे में, लकड़ी जलाकर, बाहर खुली छत में, दो मुट्ठी आतप चावल, कच्चा केला और आलू उबालकर—मैंने जब सैंधव नमक तथा देशी घी के साथ, केले के पत्ते पर उन्हें भोग निवेदन किया—तब सूर्य भी इस "अलौकिक भोजन" का साक्षी बनकर अस्त हो गया। चुकचुक ! न जाने यह साधारण भोजन कितना स्वादिष्ट लगा ? और आश्चर्य ! महा आश्चर्य!! मन प्रसन्न हो उठा। पिछले १३ दिनों का भारीपन गायब !! गुरु तेरे हाथ का खा ही गये।".....

अहैतुकी कृपा सिन्धु

श्री सुकुमार सान्याल

अपने गुरुदेव श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्दजी का आश्रय पाने की ही बात बताऊँ। रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य पढ़ने की मेरी प्रवृत्ति प्रायः पिछले डेढ़ दशक से थी। इस विद्वान संन्यासी द्वारा लिखित पुस्तकों को पढ़ने के बाद उनके दर्शन करने का कौतूहल मेरे अन्दर जागृत हुआ। दुर्भाग्य वश, राँची अथवा कलकत्ता (बेलुड़मठ) में जब-जब पता लगाया तब-तब वे बाहर गये हुए थे। अतएव उनसे भेंट नहीं हो सकी। सन् १९८० के प्रारंभ में एक दिन बेलुड़ मठ जाकर पता लगाते ही एक वृद्ध संन्यासी ने स्वतः प्रवृत्त होकर उनका निवास स्थान दिखाया। उस समय दिन के ग्यारह बज चुके थे। मन्दिर बन्द होने वाला था। मैं जल्दी से ठाकुर को प्रणाम करके दो मंजिले पर गया तथा उनके (गंभीरानन्दजी के) सेवक से कहा कि मैं महाराज के साथ साक्षात्कार करना चाहता हूँ। कुछ देर बाद महाराज सामने आकर खड़े हो गये तथा सामने रखी एक कुर्सी पर बैठे। उन्हें प्रणाम करके मैंने कहा, 'महाराज, आपके द्वारा लिखी हुई प्रायः सभी पुस्तकों को मैंने पढ़ा है एवं जिन्होंने उन पुस्तकों की रचना की है उनको देखने का आग्रह मेरे अन्दर बहुत दिनों से था, किन्तु सुयोग नहीं मिलता था। आज आपको अपनी आँखों से देखकर मैं बहुत ही आनंदित हुआ हूँ।" प्रारंभिक परिचयादि होने के बाद महाराज ने मुझसे पूछा कि उनकी कौन सी पुस्तक मुझे विशेष रूप से अच्छी लगी है। मैंने कहा—"युगनायक विवेकानन्द'। तीन खंडों वाली यह पुस्तक मैंने रात-भर जगकर समाप्त की है। उस पुस्तक को लिखने में आपको बहुत ही परिश्रम करना पड़ा है।" वे थोड़ा हँसे। जिससे मेरे मन में हुआ मानो वह परिश्रम कुछ नहीं है।

उन्हें प्रणाम करके नीचे उतरने पर पता नहीं क्यों फिर मैं ऊपर गया। उस समय वे कुर्सी छोड़कर कमरे के अन्दर जाने ही वाले थे। अकस्मात् मेरे मुख से निकल पड़ा, "महाराज, क्या आप दीक्षा देते हैं?" यद्यपि दीक्षा लेने की मेरी इच्छा नहीं थी, बल्कि मैं इसका विरोधी ही था। वे सिर हिलाकर बोले "हाँ, मैं दीक्षा देता हूँ काशीपुर उद्यानगृह में तथा प्रभु महाराज (स्वामी वीरेश्वरानन्दजी) मठ में देते हैं।" पता नहीं क्यों, अचानक मैंने कह डाला, "महाराज, क्या मुझको दीक्षा देंगे?" प्रत्युत्तर आया —"हाँ, मैं तुमको दीक्षा दूंगा। कल सुबह में ही मैं कुछ दीक्षार्थियों को दीक्षा दूंगा। तुम सुबह में ८ बजने के पहले बिना कुछ खाये थोड़ा फूल, फल, मिठाई आदि लेकर काशीपुर उद्यानगृह में आना।" नीचे उतरने के पहले मैंने कहा, "महाराज, दीक्षा लेने की बात मैंने कभी नहीं सोची थी। अकस्मात् मेरे मुख से दीक्षा की बात क्यों निकल पड़ी?" इसपर महाराज ने कहा, "वत्स, तुम्हारा समय हो गया है, तुम नहीं जानते हो। सब ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) कराते हैं।" अनजाने आनन्द का आभास पाकर सारी रात अनिद्रा में ही बीत गयी। दूसरे दिन मेरी दीक्षा हो गयी।

जब महाराज सहाध्यक्ष थे, तब राँची में कई बार उनकी स्नेह छाया एवं पुण्य संग प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे तथा मेरी पत्नी को प्राप्त हुआ था। हम दोनों ही उनके दीक्षित शिष्य हैं। और एक दिन की बात याद आती है। उस दिन सबेरे बेलुड़ मठ में उनकी पद-सेवा करते-करते, पता नहीं क्यों, मुझे रुलाई आ गयी। ऐसी रुलाई कि अपने आप को मैं संभाल नहीं पा रहा था। उन्होंने मेरे मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया तथा प्रसाद ग्रहण करके जाने को कहा। मैंने कहा कि मैं एक दिन पुनः आऊँगा। उस समय वे महाध्यक्ष नहीं हुए थे।

महाराज के साथ मेरी अंतिम मुलाकात ५ जनवरी १९८८ को हुई। जलपाइगुड़ी मिशन आश्रम में दीक्षा देने के बाद शिलीगुड़ी रामकृष्ण-विवेकानन्द सोसाइटी आश्रम में वे कुछ घंटों के लिए ठहरेंगे तथा भक्तों के

प्रणाम ग्रहण करेंगे एवं आहारादि के पश्चात् वहाँ से प्लेन द्वारा कलकत्ता लौटेंगे—ऐसा ठीक हुआ था। वे मुझको देखकर बहुत खुश हुए। बागडोगरा हवाई अड्डे पर भी० आई० पी० कक्ष में बैठकर उनके साथ हुई थोड़ी-बहुत सरस बातचीत आज भी मेरे मन में गुंथी हुई है। उनका नाम 'गंभीर महाराज' होने पर भी, स्थान-विशेष से वे एक रसिक पुरुष थे।

वे अब नहीं है, किन्तु उनकी अमर-वाणी बारम्बार घूमफिरकर याद आती है—"वत्स, तुम नहीं जानते हो, तुम्हारा समय हो गया है। यह सब ठाकुर कराते हैं।"

(रामकृष्ण वेदान्त मठ, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'विश्ववाणी,' पौष १३९५ से साभार अनूदित—स०।)

●

शरणं तव चरणं

नितिन दिवाकर
बम्बई।

मई १९८६ की घटना है। एक दिन मैं बम्बई रामकृष्ण मिशन गया था। वहाँ के बुक स्टाल पर जाते ही मेरी नजर स्वामी गंभीरानन्दजी की एक छवि पर पड़ी। उस छवि को देखते ही मेरे मन के अन्दर से एक आवाज आयी : यही हैं मेरे जीवन के पथप्रदर्शक, यही हैं मेरे गुरुदेव! वह अनुभूति इतनी तीव्र थी कि क्षण मात्र में मेरे सभी संशय एवं द्वन्द दूर हो गये तथा मैंने उन्हें अपने गुरु के रूप में वरण कर लिया। मैं तत्काल इस छवि को खरीदकर अपने घर ले आया। यद्यपि दिसम्बर १९८५ में बेलुड़ मठ में उनके प्रथम दर्शन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था, परन्तु उस समय मेरे मन के ऊपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था।

मैं उनसे दीक्षा ग्रहण करने के लिए उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहा था। परन्तु उस वर्ष बम्बई में उनका पदार्पण नहीं हुआ। सन् १९८७ के मार्च में बम्बई में उनके प्रस्तावित आगमन की खबर मुझे मिली। मैं बहुत ही आनन्दित हुआ एवं उनसे दीक्षा ग्रहण करने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ था।

मैंने अपने निर्णय से अपने भाइयों को अवगत कराया। रामकृष्ण भावधारा से उनका विशेष परिचय नहीं था। यदा-कदा बम्बई रामकृष्ण मिशन आया-जाया करते थे। पृष्ठभूमि से अवगत नहीं रहने के कारण उन्होंने सोचा कि जल्दीबाजी में मैंने अपना निर्णय लिया है। उनके अनुसार इस मामले में मुझे धैर्यशील होना चाहिए था, क्योंकि जीवन-व्रत का सवाल है। परन्तु मैं अपने निर्णय पर अडिग रहा।

जिस दिन महाराज बम्बई आये उस दिन अपने दोनों भाइयों के साथ मैं उनके दर्शन के लिए गया। महाराज के दर्शन पाकर उनके अन्दर कौन सा परिवर्तन हो गया—यह न तो वे समझ पाये और न मैं। बाहर आकर उन्होंने कहा कि वे लोग भी दीक्षा-ग्रहण करेंगे। अचानक संशय से पूर्ण विश्वास में उनकी मनोवृत्ति बदल गयी। यह देखकर मैं बहुत ही आश्चर्य-चकित हुआ। २६ मार्च १९८७ को हम तीनों भाइयों की दीक्षा गंभीर महाराज से हो गयी। श्रीरामकृष्णदेव ने अपने चरणों में हमें स्थान दिया।

बम्बई में जब मैंने उन्हें सर्वप्रथम देखा तब सोचा कि वे बहुत ही कड़े होंगे एवं मेरे मन में उनके प्रति थोड़ा

भय था। परन्तु जब मैंने उन्हें पूर्व परिचित भक्तों के साथ बातें करते हुए देखा तब वे पूरी तरह अलग व्यक्ति दिखाई दिये। उस समय न वह कठोरता और न वह गंभीरता। जब वे हँसते थे तब एक शिशु की तरह लगते थे। उनकी हँसी बहुत ही मधुर थी जिससे स्नेह एवं सरलता फूट पड़ती थी। उनके पूर्ण व्यक्तित्व में एक स्वाभाविकता थी।

अपने जीवन में पहली बार किसी व्यक्ति के सामने मुझे भय-बोध हुआ था। जब कभी मैं उनके दर्शन करने जाता, मैं मूक हो जाता था। कभी भी उनसे कोई प्रश्न करने की इच्छा नहीं होती थी। उनके समक्ष चुपचाप बैठना ही मुझे पसंद था एवं वही काफी था। किन्तु उनके पास बैठने से जीवन-भर की तपस्या की सुदृढ़ भित्ति पर निर्मित महान चरित्र के मूल्य-बोध का अनुभव मुझे हुआ। वे मितभाषी थे। हमलोग उन्हें बातचीत करते हुए बहुत ही कम देखते थे किन्तु उनकी उपस्थिति मात्र मन को उच्च स्तर पर आरूढ़ करनेवाली थी। अतएव उनकी उपस्थिति में एक प्रकार की गहरी संतुष्टि का अनुभव होता था। उनके व्यक्तित्व की एक और विशेषता थी। उनका व्यक्तित्व बहुत ही विशाल था जो साधारणतः महापुरुषों मे देखा जाता है। उनके समक्ष सभी के सिर श्रद्धा से झुक जाते हैं। वे मुझे एक ऐसे राजपुरुष की तरह लगते थे जो अपने वैभव के बीच बैठे हुए हैं। परन्तु उनकी सम्पदा सांसारिक नहीं थी, महान चरित्र ही उनकी बहुमूल्य सम्पदा था।

जब वे कुछ बोलते थे तब अधिकार-पूर्वक बोलते थे- यह मैंने निम्नलिखित घटनाओं में अनुभव किया था।

महाराज राजकोट में भक्तों पर कृपा करके लौटे थे। एक महिला ने पूछा कि उनकी राजकोट यात्रा कैसी रही? महाराज ने कहा कि यात्रा सुखद रही। इसके बाद उस महिला के द्वारा यह पूछे जाने पर कि राजकोट की जलवायु कैसी है, उन्होंने कहा: "मुझे लगता है वह अच्छी है। मैं वातानुकूलित कमरे में था तथा केवल शाम को कुछ देर के लिए मैं बाहर निकलता था। अतः मैं निश्चित रूप से यह नहीं बता सकता हूँ कि दिनभर वहाँ की जलवायु कैसी रहती है।" इसके बाद वे कुछ क्षणों तक मौन रहकर पुनः बोले: "देखो, सबकुछ भीतर है, बाहर नहीं। तुम्हारे भीतर ही सभी आनन्द हैं। तुम अपने हृदय के अन्तस्थल में आनन्द खोजो, फिर बाह्य परिस्थितियों का कोई मूल्य नहीं रहेगा। बाहरी परिस्थितियाँ समय के साथ परिवर्तनशील हैं, किन्तु जो अन्दर है वह सदा अपरिवर्तनशील है।" यह कहकर वे मौन हो गये। फिर किसी को भी उनसे बातचीत करने का साहस नहीं हुआ। मेरा मन विस्मय से भर गया, क्योंकि जिसकी अनुभूति सैंकड़ों पुस्तकों को भी पढ़ने से नहीं होती वह उनके श्रीमुख से निःसृत एक-मात्र वाक्य को सुनने से हो गयी। मानो कि मुझे एक नया मंत्र मिला। जब कभी मैं विषण्ण होता हूँ गुरुदेव के वे शब्द मेरे मानस-चक्षु के समक्ष झलक उठते है और मैं नये विश्वास, नयी शक्ति का अनुभव करता हूँ। क्योंकि इस शब्दों में जीवन की अनुभूति निहित है।

और एक घटना का उल्लेख करके मैं अपना संस्मरण समाप्त करूँगा। मैं इसका साक्षी हूँ। घटना छोटी होने पर भी बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा यह व्यक्त होता है कि हरेक व्यक्ति के लिए उनके हृदय में किस प्रकार का प्रेम था।

एक दिन एक सेवानिवृत कमिश्नर आये। वे महाराज के शिष्य एवं उनसे पूर्व परिचित थे। जब वे महाराज के श्री चरणों में अपना प्रणाम निवेदित करके उठे तब बम्बई आश्रम के अध्यक्ष महाराज ने गुरुदेव को उनके बारे में बताया। तत्क्षणात् महाराज ने कहा: तुम्हारी पीठ में दर्द है। तुमने क्यों झुककर प्रणाम किया? मेरे घुटनों को ही स्पर्श करने से हो जाता।" उन्होंने जिस भाव से यह कहा उससे मुझे लगा मानो माँ के कोमल हृदय ने पुत्र की पीठ के दर्द को स्वयं अनुभव किया हो। एक व्यक्ति दूसरे को किस हद तक स्नेह कर सकता है यह मैंने उस दिन प्रत्यक्ष देखा।

जब कभी मैं अपने गुरुदेव की याद करता हूँ मेरे हृदय के अन्तस्थल में एक महा अभय का अनुभव होता है जिसे इस विश्व की किसी भी वस्तु के साथ विनिमय करना मैं नहीं चाहता हूँ। अंत में उ के श्री चरणों में मेरी प्रार्थना है कि वे श्री श्रीठाकुर, माँ एवं स्वामीजी के प्रति मुझे भक्ति प्रदान करें।

अंतिम दीक्षा-दान

—एक सदस्य
श्री श्रीरामकृष्ण सेवा समिति
नवद्वीप (नदिया), पं० बंगाल।

श्रीधाम नवद्वीप। श्री श्रीचैतन्य महापुरुष की पुण्य जन्मभूमि एवं लीलास्थली। एकबार भगवान श्रीरामकृष्ण नवद्वीप दर्शन को आये थे। यहाँ पर घूमघूमकर उन्होंने प्रायः सभी देवमूर्तियों के दर्शन किये, परन्तु महाप्रभु की उपस्थिति कहीं दिखाई न दी। अंत में निराश होकर जब वे नौका द्वारा लौट रहे थे तभी उन्हें एक अद्भुत दर्शन हुआ। परवर्ती काल में अपने उस दर्शन का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा था, "दो सुन्दर बालक—ऐसा रूप मैंने कभी नहीं देखा था—तप्तकांचन-जैसा वर्ण, किशोरावस्था, मस्तक के चारों ओर एक ज्योतिर्मण्डल, अपने हाथों को उठाकर मेरी ओर हँसते हुए आकाश-मार्ग से दौड़े चले आ रहे हैं। तत्काल ही 'वह देखो, आ रहे हैं, आ रहे हैं,' यह कहकर मैं चिल्ला उठा। मेरे यह कहते ही वे दोनों मेरे समीप आकर इसके (मेरे शरीर के) अन्दर प्रविष्ट हो गये और मैं बाह्य चेतना रहित (समाधिस्थ) होकर गिर पड़ा।" इस प्रकार गंगागर्भ का वह स्थान गौर-निताई एवं श्रीरामकृष्ण के महामिलन से एक पुण्य तीर्थ में परिणत हो गया।

यह अनुमान किया जाता है कि नवद्वीप रामकृष्ण सेवा समिति प्रतिष्ठित श्रीरामकृष्ण मन्दिर उसी पवित्र स्थान पर या उसके सन्निकट ही अवस्थित है, क्योंकि कालान्तर में भागिरथी ने अपनी धारा परिवर्तित कर दी। और गंगागर्भ का वह स्थान गंगातट का एक भू-भाग बन गया। जिस स्थान पर मन्दिर स्थापित है उसको स्थानीय लोग आज भी 'छाड़ा गंगा' (जिस स्थान को छोड़कर गंगा हट गयी हो) कहते हैं। अतएव वह स्थान अतीत में गंगागर्भ में था इसमें कोई संदेह नहीं है।

इस पवित्र स्थान के साथ परम पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज के जीवन का एक विशेष संबंध है। नवद्वीप रामकृष्ण सेवा समिति के विशेष अनुरोध पर एक ही वर्ष में वे दो बार यहाँ पधारे थे। उनका यह आगमन रामकृष्ण गौरांग के मिलन-स्थल के आकर्षण वश हुआ हो या महाप्रभु ने अपने परम प्रिय भक्त को आकर्षित करके लाया हो—यह हमें मालूम नहीं, परन्तु उनके शुभागमन से नवद्वीपवासी धन्य हुए थे। रामकृष्ण सेवा समिति के ५४ वर्ष के इतिहास में इसके पहले रामकृष्ण मठ एवं मिशन के किसी भी संघाध्यक्ष का पदार्पण यहाँ नहीं हुआ था।

पहली बार पूज्यपाद महाराज १४ जनवरी १९८८ को नवद्वीप आये थे एवं १७ जनवरी तक रहकर भक्तों पर कृपा की थी। उनका द्वितीय शुभागमन २० दिसम्बर १९८८ को हुआ था एवं चार दिनों तक यहाँ उनका अधिष्ठान हुआ था। इस बार भी सैकड़ों भक्त उनसे मंत्रदीक्षा-ग्रहण कर धन्य हुए थे। उनका यह द्वितीय आगमन उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण अध्याय है क्योंकि यही उनकी अंतिम यात्रा थी, यही उनका अंतिम दीक्षा-दान था। यहाँ से लौटने के कुछ ही दिनों बाद वे महासमाधि में लीन हो गये। अतः नवद्वीप में उनके द्वितीय बार के अवस्थान एवं दीक्षा-दान के संबंध में कुछ जानने की उत्सुकता स्वाभाविक है।

जैसा कि पहले कहा है श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज द्वितीय बार २० दिसम्बर १९८८ को नवद्वीप आये थे। द्वितीय बार पूज्य महाराज स्व इच्छा से नवद्वीप गये थे। उनका स्वागत करने के लिए श्री मंदिर, दीक्षा-स्थान, अतिथि भवनों एवं पूरे आश्रम प्रांगण को पुष्प-पत्र-माल्य आदि नाना-विध सज्जाओं से सुसज्जित किया

गया था। महान अतिथि के आगमन के उपलक्ष्य में आश्रम अति कर्म-चंचल हो उठा था। वह उष्ण-प्राणस्पर्शी अभ्यर्थना; दर्शन-दान, एवं दीक्षा दान! २२ एवं २३ दिसम्बर को पूज्यपाद महाराज ने १८० भक्तों को मंत्रदीक्षा देकर धन्य किया था। जिसमें ८० लोग स्थानीय एवं बाकी आसपास के थे। आश्रम प्रांगण में रामकृष्ण-विवेकानन्द एवं वेदान्त-साहित्य बिक्री केन्द्र भी परिचालित हुआ था। नियमित रूप से पूर्वाह्न में दीक्षा-दान, संध्या समय आरती के बाद दर्शन-दान एवं अपराह्न में धर्मसभा आयोजित हुई थी। इस धर्म सभा में श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ एवं स्वामी विवेकानन्दजी के संबंध में कई स्थानीय एवं बहिरागत स्वनामधन्य वक्ताओं ने अपने-अपने विचार प्रकट किये थे। पूज्य महाराज की विशेष अनुमति के अनुसार ही धर्मसभा आदि का आयोजन हुआ था। चार दिनों के लिए आश्रम प्रांगण एक विराट आनन्दोत्सव-स्थल में परिणत हो गया था।

इस संसार में कुछ भी चिरस्थायी नहीं है। सृष्टि में जैसे प्रलय का बीज निहित रहता है, उसी प्रकार आनन्द में निरानन्द का संकेत रहता है। अधिक आनन्द हमलोगों के भाग्य में नहीं था। देखते-ही देखते हमलोगों के आश्रम से एवं नवद्वीप धाम से पूज्यपाद महाराज के प्रस्थान की घड़ी आ गयी। हमलोग इसकी कल्पना भी नहीं कर पाये कि पूज्यपाद महाराज हमलोगों के पास से चिरकाल के लिए विदाई ग्रहण कर रहे हैं। किसको पता था कि यही होगा उनके सुदीर्घ ऋत्विक जीवन का अंतिम दीक्षा-दान, यही होगी उनकी अंतिम यात्रा। शारीरिक अस्वस्थता के कारण निर्धारित समय से कुछ मिनट पहले ही उन्होंने बेलुड़ मठ की ओर प्रस्थान किया। जाने के समय आश्रम के सचिव महोदय ने उनसे पूछा : 'महाराज, हमलोगों के यहाँ आपको कैसा लगा?' उत्तर में मधुर मुस्कान के साथ उन्होंने कहा : 'मुझे बहुत ही अच्छा लगा है।' साथ ही उन्होंने आश्वासन दिया था कि ठाकुर की इच्छा होने पर वे पुनः आयेंगे। आश्रम के असम्पूर्ण कार्य को पूर्ण करने के लिए समिति के सचिव महोदय ने जब उनके आशीर्वाद की याचना की तब उन्होंने कहा : 'ठाकुर का आशीर्वाद तुमलोगों के ऊपर सदा-सर्वदा है। मैंने तुमलोगों की प्रार्थना उनके श्री चरणों पर निवेदित की है।'

२२ दिसम्बर की रात से ही वे अस्वस्थता का अनुभव कर रहे थे। दूसरे दिन सुबह में दीक्षा-दान अनुष्ठान स्थगित हो सकता है—इस आशंका से शायद उन्होंने अपनी शारीरिक अस्वस्थता की बात गुप्त रखी थी। हमलोगों के यहाँ आकर उनके अस्वस्थ होने से जब हमलोग मर्माहत हुए तब सचिव महोदय को सान्त्वना देते हुए परम कारुणिक पूज्यपाद महाराज ने कहा था : 'नहीं बाबा, शरीर रहने से रोग-शोक होगा ही। सब ठीक हो जायगा। तुमलोग इसके लिए कोई चिन्ता मत करो।'

२४ दिसम्बर की सुबह में उन्हें यहाँ से बेलुड़ मठ ले जाया गया। इसके बाद क्या हुआ यह आपलोग जानते ही हैं।

भगवान श्रीरामकृष्ण की इच्छा होने पर बेलुड़-मठ के बहु साधु-ब्रह्मचारियों का पदार्पण महाप्रभु की पदरज धन्य इस भूमि पर होगा, किन्तु हमलोगों की आत्माओं की आत्मा बेलुड़ मठ एवं मिशन के प्राण-पुरुष परम पूज्य स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज अपने स्थूल शरीर से अब यहाँ कभी नहीं आयेंगे। किन्तु नवद्वीप धाम के सैकड़ों भक्तों के हृदय में वे चिरकाल के लिए प्रतिष्ठित रहेंगे। अपने अनुपम जीवन एवं कर्म से वे हमें सदा प्रेरित करते रहेंगे। नवद्वीप की रामकृष्ण सेवा समिति के इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। युगावतार भगवान श्रीरामकृष्णदेव एवं प्रेमावतार श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो!

★

धर्म एवं जीवनी साहित्य के एक प्रख्यात पुरुष

—प्रणवेश चक्रवर्ती

संन्यासियों के लिए मृत्यु नहीं है। मृत्यु की पार्थिव सीमा को लाँघकर परम अभिलाषित श्रीरामकृष्ण लोक में उनका (स्वामी गंभीरानन्दजी का) नित्य अवस्थान है। इसलिए ९० वर्ष की आयु में रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के एकादश संघगुरु श्रीमत्स्वामी गंभीरानन्दजी की महासमाधि कितना ही वियोगान्तक क्यों न हो, वह निश्चित रूप से कोई शोकावह घटना नहीं है। मृत्यु के पूर्व मुहूर्त तक वे कर्म-मुखर एवं सचेतन थे। महाप्रयाण के पूर्व क्षण तक उनका कण्ठ करुणा से सिक्त था।

परन्तु इस मनीषी संन्यासी के महाप्रयाण से भारतीय धर्म-साहित्य एवं बंगला जीवनी-साहित्य के क्षेत्र में एक अपूर्तिकर शून्यता की सृष्टि हुई है। प्रखर बुद्धि-दीप्त इस महान संन्यासी की आध्यात्मिक शक्ति की तरह उनकी ज्ञान-गरिमा भी अपरिसीम थी। उनकी क्लान्ति-हीन-दृष्टि भारतीय शास्त्र-सम्पदा की गहराई में निमग्न होकर उनकी अनन्त परिक्रमा में नियुक्त थी। यहाँ इस प्रसंग में मेरा प्रणाम निवेदित है।

भारतीय सुप्राचीन परम्परा एवं आध्यात्मिक जीवन में 'प्रस्थान त्रयी' ने शताब्दियों से गुरुत्वपूर्ण स्थान अधिकृत कर रखा है। प्रस्थान-त्रयी के अन्तर्गत हैं—ब्रह्मसूत्र, श्रीमद् भगवद्गीता एवं उपनिषद। इन तीनों के समन्वय से ही वेदान्त के तीन मूल स्तम्भों का निर्माण हुआ है। इन तीनों के समन्वय में ही भारतीय महाजीवन का यथार्थ स्वरूप प्रतिफलित हुआ है। इन महाग्रन्थों के संबंध में अग्नि ऋषि शंकराचार्य के भाष्य सबसे अधिक प्रामाणिक एवं सर्वजन ग्राह्य वेदान्त के अपरिहार्य सम्पद हैं। आधुनिक विश्व में इन तीनों ही ग्रन्थों के संबंध में आग्रह क्रमशः बढ़ रहा है। यहाँ तक कि भारत में भी संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ लोगों का भी आग्रह इस ओर बढ़ रहा है।

इस पटभूमिका में ज्ञानयोगी संन्यासी स्वामी गंभीरानन्दजी भारत तथा विश्व के विद्वत-समाज के निकट चिरकाल श्रद्धा के आसन पर प्रतिष्ठित रहेंगे, क्योंकि इन तीनों ही ग्रन्थों के अपूर्व अंग्रेजी अनुवाद उन्होंने अपनी जीवन-साधना की सम्पदा को उजाड़ करके किये हैं।

मद्रास विश्वविद्यालय के 'सेन्टर ऑफ एडवान्स्ड स्टडी इन फिलॉसफी' के अध्यक्ष एवं प्रसिद्ध विद्वान टी० एन० पी० महादेवन ने इन प्रसंग में कहा है, "शंकराचार्य के भाष्य सहित ब्रह्मसूत्र का अनुवाद बहुत कम हुआ है। इसके लिए प्रथम प्रयासी हुए थे जार्ज थिबाउट। किन्तु स्वामी गंभीरानन्द द्वारा अनूदित ग्रन्थ का एक के बाद एक संस्करण प्रकाशित होने की घटना से ही इस ग्रन्थ की अपूर्व सार्थकता प्रमाणित होती है। ब्रह्मसूत्र शाश्वत एवं युगान्तकारी आकर्षण का विषय है और स्वामी गंभीरानन्दजी कृत अनुवाद इसका ही विश्वसनीय एवं सहायक भाषान्तर है। वेदान्त के प्रति आकृष्ट अंग्रेजी भाषा-भाषियों के लिए यह प्रयास अभिनन्दनीय है।

ब्रह्मसूत्र के रचयिता हैं बादरायण जिन्हें व्यास देव भी कहा जाता है। स्वामी गंभीरानन्दजी ने 'सूत्र भाष्य' का एक सुन्दर अनुवाद किया है।

संस्कृत, बंगला एवं अंग्रेजी भाषा में उनकी अपूर्व दक्षता तथा असाधारण व्युत्पति सर्वजन-विदित है। विशेषकर, भारतीय प्राचीन साहित्य एवं शास्त्र के संबंध में उनका ज्ञान एवं पांडित्य पूरे देश का एक परम सम्पद था। उपनिषद् ग्रन्थावलि का अंग्रेजी एवं बंगला अनुवाद

सम्पन्न करके उन्होंने एक ऐतिहासिक दायित्व पालन किया है। बंगला भाषा में तीन खंडों में प्रकाशित दस उपनिषदों का संग्रह 'उपनिषद ग्रन्थावलि' विद्वानों एवं पंडित समाजों के बीच बारम्बार अभिनन्दित हुआ है। सिर्फ इतना ही नहीं, साधारण लोगों के बीच भी यह काफी जनप्रिय हुई है। ग्रन्थ की भारी माँग इसकी जनप्रियता का प्रमाण है।

इसके अतिरिक्त 'स्तव कुसुमांजलि' एवं 'सिद्धान्त लेश संग्रह' नामक दो ग्रन्थ भी बंगला शास्त्रानुवाद साहित्य में उनके अमर अवदान का साक्षी दे रहे हैं।

अंग्रेजी में 'शंकर भाष्य सहित ब्रह्मसूत्र' के अनुवाद के अतिरिक्त नौ उपनिषदों एवं श्रीमद्भगवद्गीता के असाधारण अनुवाद की बात हमने पहले ही की है। अनुवाद ग्रन्थों के अलावे, उनकी मौलिक रचना का क्षेत्र भी सुदूर प्रसारित है।

स्वामी विवेकानन्द की प्रामाणिक जीवनी लिखने में भी उन्होंने असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है। सत्येन्द्र नाथ मजुमदार, मोहितलाल मजुमदार, प्रमथनाथ वसु आदि कई कीर्तिमान लेखकों ने स्वामी विवेकानन्द के जीवनी-ग्रन्थों की रचना की है। किन्तु इस महाजीवन के एक पूर्णांग जीवनी-ग्रन्थ का अभाव मानो किसी तरह पूर्ण नहीं हो रहा था। स्वामी गंभीरानन्द ने आलस्यहीन साधक की तरह, अपने जीवन की समर्पित साधना देकर इस अभाव को पूर्ण किया है। तीन खंडों में प्रकाशित उनका 'युगनायक विवेकानन्द' नामक ग्रन्थ भाषा के माधुर्य एवं तथ्य की निष्ठा में बंगला जीवनी-साहित्य में एक विस्मयकर संयोजन है। प्रभात कुमार मुखोपाध्याय 'रवीन्द्र जीवनी' लिखकर बंगला जीवनी-साहित्य में जिस अक्षय कीर्ति के अधिकारी हुए है, वही स्थान स्वामी गंभीरानन्दजी का भी है, इस एकमात्र ग्रन्थ की रचना से।

किन्तु वही अंत नहीं है। बंगला जीवनी-साहित्य में उनके और भी दो असाधारण संयोजन हैं—'श्रीमाँ सारदादेवी' एवं 'श्रीरामकृष्ण भक्त मालिका'। जननी सारदादेवी की पवित्र जीवन-गाथा गंभीरानन्द की जीवन-समर्पित लेखनी में मानो मूर्त हो उठी है। श्रीरामकृष्ण के गृही एवं संन्यासी लीला-पार्षदों के जीवन-वृत्तान्त भक्त मालिका में विवृत हुए हैं। वस्तुतः शेषोक्त ग्रन्थ ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में ही आज समादृत हैं।

इस प्रसंग में इसका भी उल्लेख किया जा सकता है कि 'श्रीमाँ सारदादेवी' एवं 'श्रीरामकृष्ण भक्तमालिका' का अंग्रेजी अनुवाद भी (जो उन्होंने ही किया है) काफी लोकप्रिय ग्रन्थ हैं। केवल जीवनी-ग्रन्थ ही नहीं, स्वामी गंभीरानन्दजी ने 'History of Ramakrishna Math and Ramakrishna Mission' नामक एक सर्वांगपूर्ण इतिहास ग्रन्थ की भी रचना की है। ●

('युगान्तर' बंगला दैनिक संवाद पत्र ८.१.८९ से साभार अनूदित—स० ।)

इस विशेषांक के कुछ और दानदाता

१०. सौ० सुजाता पावस्कर—वाड-कारवार, कर्नाटक	४१-००
११. श्री एन० के० खण्डेलवाल—हिन्द मोटर्स, कलकत्ता	१०-००
१२. श्री हेमचन्द्र झा—फूलपरास, मधुबनी (बिहार)	२१-००
१३. श्री ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा—छपरा (बिहार)	५१-००
१४. श्री फुल्ली बाबू—दाउदपुर, छपरा (बिहार)	२०१-००
१५. श्री राय मनेन्द्र प्रसाद—जमशेदपुर (बिहार)	१०१-००
१६. श्री रांम छविला सिंह—मुजफ्फरपुर (बिहार)	१५-००

शोक समाचार

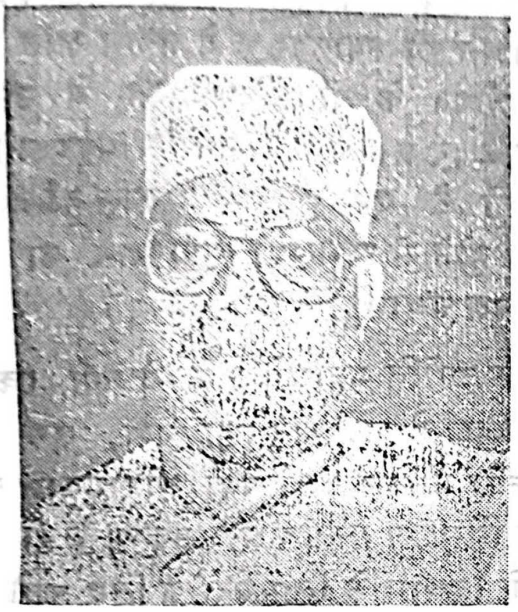

स्वामी आत्मानन्दजी महाराज

बड़े दुःख के साथ हमें अपने पाठकों और श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा एवम् स्वामी विवेकानन्द के भक्तों-अनुरागियों को सूचित करना पड़ रहा है कि गत २७ अगस्त, रविवार, भाद्रपद के कृष्णपक्ष की एकादशी को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (मध्यप्रदेश) के संस्थापक पूजनीय स्वामी आत्मानन्दजी महाराज एक जीप दुर्घटना में दिवंगत हो गये।

स्वामी आत्मानन्दजी महाराज का जन्म एक भक्त एवं धर्म परायण परिवार में ६ अक्तूबर १९२१ ई० को मध्यप्रदेश के रायपुर जिले में हुआ था। अपने छात्र जीवन में वे बड़े प्रतिभाशील थे। सन् १९५१ ई० में नागपुर विश्वविद्यालय से 'प्योर मैथेमेटिक्स' (शुद्ध गणितशास्त्र) में वे प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। विश्वविद्यालय में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने के कारण उन्हें स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। एम०एस-सी० करने के तुरन्त पश्चात् त्याग-वैराग्यमय साधु का जीवन जीने के उद्देश्य से उन्होंने रामकृष्ण मठ-मिशन में प्रवेश कर लिया। तब से जीवन के अंतिम क्षणों तक उनका जीवन श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के प्रति समग्रगत भाव से समर्पित रहा।

स्वामी आत्मानन्दजी के व्यक्तित्व में ज्ञान, भक्ति और कर्म का अद्भुत समाहार हुआ था। जब वे ध्यान में लीन रहते थे तब उनका आत्म-संस्थ स्वरूप देखकर प्रतीत होता था कि मानो ज्ञान और योग एक साथ मूर्तिमंत हो गये हों। जब वे कोमल स्वरों से रामचरित मानस का गायन करते हुए भाव-विभोर होकर मानस के विभिन्न प्रसंगों पर प्रवचन देते थे तब लगता था कि विमल भक्ति ने ही देह धारण कर ली है। और जब वे शिव भाव से दुर्भिक्ष पीड़ितों, रोगियों, अशिक्षितों और दरिद्रों के बीच अनासक्त, भाव से सेवा में तत्पर रहते थे तब लगता था मानो कर्मयोग ही साकार हो उठा है।

मध्य प्रदेश के बस्तर जिले में स्थित अबुझमाड़ क्षेत्र के आदिवासियों के पिछड़ेपन को दूर कर उनके शैक्षणिक, आर्थिक और सामाजिक अभ्युत्थान के लिए उनके द्वारा शुरू की गयी दो करोड़ रुपयों की अभूतपूर्व योजना ने उस क्षेत्र के निवासियों के जीवन में एक क्रान्तिकारी रूपान्तरण करना शुरू कर दिया था। अभी-अभी बेलुड़ मठ ने उनकी चार करोड़ की नयी योजना को भी अबुझमाड़ की जनजातियों के विकास के लिए स्वीकृति प्रदान की थी। मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री मोती लाल बोरा ने स्वीकार किया है कि वैसा विलक्षण कार्य करना सरकार द्वारा संभव ही नहीं था। और अपने इसी कर्मयोग के महायज्ञ में उन्होंने अपने जीवन की समिधा ही अर्पित कर दी।

पूजनीय स्वामी आत्मानन्दजी महाराज भारत

19 JUL 1990

विख्यात वक्ता, शास्त्र-मर्मज्ञ, प्रखर मनीषी, कुशल लेखक और सफल पत्रकार भी थे। वे धर्म को विज्ञान सम्मत होने के पोषक और विज्ञान को धर्म के साथ गलबाँही कर चलने के पक्षधर थे। प्रायः सारे भारत में घूम-घूम कर वे रामचरित मानस, गीता, उपनिषद एवं रामकृष्ण-विवेकानन्द के भावादर्शों पर प्रवचन दिया करते थे और उनका भाषण सुनने हजारों हजार नर-नारी सोत्साह एकत्र होकर तृप्ति-बोध करते थे। सन् १९८४ में उनकी पुस्तक 'गीता तत्वचिन्तन' (प्रथम भाग) का प्रकाशन हुआ जिसमें गीता के दो अध्यायों पर उनके प्रवचनों का संकलन है। धर्माध्यात्म विषयक उनके प्रेरक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित और रेडियो-टी. वी. से प्रसारित होते रहते थे। रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रसिद्ध हिन्दी त्रैमासिक पत्रिका 'विवेक ज्योति' का विगत पच्चीस वर्षों से वे कुशल सम्पादन-प्रकाशन करते आ रहे थे।

पूजनीय आत्मानन्दजी महाराज प्रायः ४०-४५ प्राइवेट रामकृष्ण आश्रमों के संस्थापक और मार्ग दर्शक थे। छपरा (बिहार) के श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम की स्थापना के वे प्रेरणा स्रोत थे और अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक वे उसके पथ प्रदर्शक, और प्रकाश थे। उनके रामकृष्णलोकवासी हो जाने से एक अपूरणीय क्षति हुई है। उनके दिवंगत होने से रामकृष्ण मठ-मिशन का प्रोज्वल प्रदीप बुझ गया है।

एक ज्योति महाज्योति में खो गयी, एक ब्रह्मविद् ब्रह्म से तदाकार हो गया, एक आत्मा परमात्मा में विलीन हो गयी, श्रीरामकृष्ण की एक विरल विलक्षण सन्तान श्रीरामकृष्ण के ही आनन्द धाम में विश्राम के लिए सदा के लिए चली गयी। स्वभावतः हम शोकार्त हैं। पर संन्यासी की मृत्यु नहीं होती। वे अमर होते हैं।

उन नित्य संन्यासी महाप्राण अमरआत्मा पूजनीय स्वामी आत्मानन्द जी महाराज के पुण्य श्लोक चरणों में हमारे शत शत श्रद्धापूर्ण प्रणाम।

*

न जायते म्रियते वा कदाचि
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ (गीता २/२०)

(यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मती है और न मरती ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाली ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है; शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारी जाती।)